



मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगैरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

४५



कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगैरेनी पत्रिका

४५

सम्पादकः

विजयशीलचन्द्रसूरि



श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी

स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि

अहमदाबाद

२००८

अनुसन्धान ४५

आद्य सम्पादक: डॉ. हरिवल्लभ भायाणी

सम्पादक: विजयशीलचन्द्रसूरि

सम्पर्क: C/o. अतुल एच. कापडिया
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशक: कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम
जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि,
अहमदाबाद

- प्राप्तिस्थान: (१) आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७
- (२) सरस्वती पुस्तक भण्डार
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्य: Rs. 80-00

मुद्रक:

क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

निवेदन

गुजरातना अग्रणी साहित्यकार श्री शिरीष पंचाले पोताना 'विवेचनपोथी' नामना पुस्तकना आमुखमां एक सरस जाणवा योग्य वात लखी :

“वडोदरा युनिवर्सिटीनी हंसा महेता लायब्रेरीनुं एक मोटुं सुख-तमे बी.ए.ना छेला वर्षमां हो तो जाते पुस्तको जोवा-तपासवानी छूट, पुस्तको ताळकूंचीमां न होय, अने एम घणां बधाने छींहुं शोधतां पोळोनी पोळो लाधी जाय.”

आवुं ग्रन्थालय बहु गमे. ग्रन्थालय केवुं होवुं जोईए तेनी कल्पना, अंशतः, आवी जग्याए साकार थती अनुभवाय. बी.ए.ना छेला वर्षवाळाने जो आटली छूट मळती होय तो, ते ग्रन्थालयमां जनारा अन्य वाचकोने पण, एटली छूट कदाच न मळती होय तोय, वांचन-अध्ययन-संशोधन आदि माटे पुस्तको तो उपलब्ध थतां ज हशे, एवुं निःशङ्क कही सकाय.

हवे जरा आनो बीजो छेडो जोईए : अमदावादना एक विख्यात अने विशाल ग्रन्थालयमां एवी स्थिति प्रवर्ते छे के त्यांनुं एक पण पुस्तक कोईने पण भणवा-वांचवा माटे बहार लई जवा न मळे. तमारे त्यां जईने ज ते वांचवुं पडे, ते पण ग्रन्थपालनी अनुकूलता होय तो. बहार लई जवा माटे कां तो तमारे विशिष्ट लागवग, ओळखाण के भलामण शोधवानां रहे, अने कां तो तमारा खरचे तेनी झेरोक्स नकल करावीने लई जई सकाय. ते माटेनो खर्च ते संस्था कहे तेटलो आपवो पडे, अने तेमनी फुरसदे नकल करावी आपे त्यारे ज लई आववी पडे. फलतः ग्रन्थालयनो उपयोग नहिवत् रही गयो छे एम जाणवा मळ्या करे. जैन साधुने तो पुस्तक आपवानी खास अरुचि ! केम ? एटला माटे के ते लोको लई गया पछी पुस्तक पाछुं आपवानी दरकार नथी राखता - तेवुं, ते संस्थाना लोकोए, क्वचित्, अनुभव्युं छे.

आ क्षणे मने मारा परमगुरु आचार्य श्रीविजयनेमिसूरि महाराज याद आवे छे. तेओ कहेता :

● भेगा करेला ग्रन्थभण्डारमांनुं कोई पुस्तक, सो वर्ष पछी पण, अभ्यासीने घणी शोधखोळ अने महेनत पछी पण क्यांयथी न मळ्युं होय, अने ते आपणा ग्रन्थभण्डारमां आवे, मागे वा शोधे, अने जो तेने ते पुस्तक मळी जाय, तो आपणे बनावेलो के संग्रहेलो आखो ग्रन्थभण्डार सार्थक छे. भले पछी तेना बीजा हजारो ग्रन्थो आम ज पड्या रहे !

● ग्रन्थभण्डारनो सतत अने विपुल मात्रामां उपयोग थाय तो केटलांक पुस्तको फाटे पण खरां, खोवाय अने पाछं न आवे एवं पण बने. पण तेथी काई ग्रन्थभण्डार बंध करी देवो के पुस्तको आपवानुं मांडी वाळवुं, ते काई ते बधांनो इलाज नथी. खरेखर तो जे ग्रन्थालयमांथी १२ महिने २५-५० पुस्तको फाटे तूटे अथवा तो वांचवा-भणवा गयां होय अने पाछं न आवे, तो ते ग्रन्थालयने माटे गौरवरूप बाबत गणाय : ए ग्रन्थालय जीवंत छे अने लोको तेनो खूब उपयोग करे छे ए ज एनाथी पुरवार थाय छे. जे ग्रन्थालयमांथी आ रीते पुस्तको ओछं के आघांपाछं नथी थतां, ते ग्रन्थालय तो ग्रन्थोनी वखार (गोडाऊन) मात्र गणाय, ज्ञानभण्डार के लायब्रेरी नहि ज.”

अलबत्त, नियमो अने नियन्त्रणो होवां ज जोईए. कोने अपाय, क्यारे ने केवी रीते अपाय, केटलां अपाय, आ बधां धाराधोरणो अनिवार्य ज गणाय. दुर्लभ प्रकारनां पुस्तको बहार लई जवा न देवाय, अथवा तेनी नकल ज लई जवा देवाय, आ बधुं आवश्यक छे ज. परन्तु आ नियम-नियन्त्रणो तमाम पुस्तको परत्वे अने हमेश माटे जो लागु पाडवामां आवे, तो ते नियमजड ग्रन्थालय जते जहाडे अवावरु ग्रन्थ-वखारमां फेरवाई गया विना न ज रहे.

विडम्बना तो ए छे के भणवा-वांचवा माटे पण नहि अपातां पुस्तको, बजारमां वेचातां उपलब्ध थतां रहे छे. एनी अंदर जे ते ग्रन्थालयनां नाम, सिक्को, कार्ड वगैरे अकबंध होय, अने ते जोईए त्यारे सहेजे सवाल उद्भवे के कोईनेय नहि अपायेलुं-अपातुं पुस्तक अहीं शी रीते पहुँच्युं हशे ? सार एटलो ज के वाचको/अभ्यासीओ माटेनी सामग्री, ओछामां ओछुं, उठांतरीना अने वेचाण द्वारा कोईने धनोपार्जनना काममां तो आवे छे !

लायब्रेरी, पुस्तकालय, ज्ञानभण्डार, ग्रन्थालय साथे काम पाडनार हरकोईने, आथी, एटलुं ज निवेदन करवुं छे के तमे ज्ञाननी परब मांडीने अथवा वारसामां मेळवीने बेठा छे; थोडुंक पाणी ढोळाई जाय के बगाड थाय तो गभराशो नहि, अने परबनो संकेलो करीने बेसी रहेशो नहि. संघर्षुं ज्ञान उधई-उंदरने खप आवशे, अने वपरातुं ज्ञान सचवाशे तो खरुं ज, वृद्धि पण पामशे. आपणे ज्ञानना रखेवाळ बनीए, संवर्धक बनीए, वारसदार पण जरूर बनीए; पण ज्ञान-प्रसारमां अवरोध ऊभो करे तेवा चोकीदार न बनीए. विद्या-प्रसारमां अवरोध ऊभो थाय तेवुं वर्तवुं ते तो एक प्रकारनो प्रज्ञापराध छे. सुज्ञ होय ते आनाथी अवश्य बचे.

— शी.

अनुक्रमणिका

श्रीबीबीपुरस्थित श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालयनी प्रशस्ति : भूमिका	मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	६
श्रीबीबीपुरमण्डनश्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथचैत्यप्रशस्ति: ॥	-सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	१८
श्रीश्रीवल्लभोपाध्यायप्रणीतं चतुर्दशस्वरस्थापनवादस्थलम्	-सं. म. विनयसागर	३०
मुनि मेरुरचित नव गीतिकाओ	-सं. उपा. भुवनचन्द्र	४४
सप्तदश पूजा प्रकरण गर्भित शान्तिनाथ स्तवन	सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	४८
अज्ञातकर्तृक-श्रीसम्यक्त्वस्तवन	- सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	५४
पण्डितविशालमूर्तिरचित श्रीधरणविहार चतुर्मुखस्तव	-सं. म. विनयसागर	५८
'पितर' संकल्पना की जैन दृष्टि से समीक्षा	- डॉ. अनीता सुधीर बोथरा	६८
गूंगो गोळतणा गुण गाय	- शी.	९१
टूंक नोंध :		
(१) ७४१ वर्ष जूनं एक समवसरण		१०५
(२) अनुसन्धान ४३-४४ मांना लेखो विशे पूरक नोंध		१०६
विहंगावलोकन	- उपा. भुवनचन्द्र	१०८

श्रीबीबीपुरस्थित श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालयनी प्रशस्ति : भूमिका

मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजय

प्रशस्ति एटले चैत्यनिर्माणनी विगत-चैत्यप्रतिष्ठा करनार श्रावकना वंशनी-तेना कार्यनी प्रतिष्ठापक आचार्यनी माहिती-आपतो ऐतिहासिक दस्तावेज.

प्रस्तुत प्रशस्ति तपागच्छनी सागरशाखाना श्रीसौभाग्यना शिष्य सत्यसौभाग्य गणिअे सं. १६९७ मां रची छे. 'शान्तिदास शेठे आ जिनालयनी प्रतिष्ठा सं. १६८२ मां करी' तेवी नोंध जैन परम्परानो इतिहास, भाग-३, पृ. ७५७ पर छे. तो आ प्रशस्तिनी रचना ते वखते न थता १५ वर्षना आंतरे थई तेनुं शुं कारण हशे ? एवो सवाल सहज ऊठे छे.

अहीं चैत्यप्रशस्तिना परिचय साथे प्रशस्तिमां न होवा छतां शेठ शान्तिदास-आ. राजसागर सूरिजीनो-चिन्तामणिपार्श्वनाथनो विशेष परिचय अहीं संकलन करीने लख्यो छे.

बीबीपुर

“सैयद सूर मीर बीन सैयद बडा बीन याकुबने 'बीबी' नामनी माता हती. तेनो रोजो मंगळदास शेठनी मीलनी पाछळ 'दादा हरि वाव'नी पासे छे. तेना नामथी 'बीबीपुर' वस्युं हतुं. ते असारवा अने सैयदपुर (सरसपुर) नी वच्चे हतुं. संभव छे के बीबीपुर-सीकंदरपुरनी साथे ज जोडायेल होय.” [जैन. परं. इति. भाग-३, पृ. १९९]

अनुसन्धान २४ मां पू.सहजकीर्ति म. द्वारा रचायेल श्री १०८ पार्श्वनाथ स्तवन छपायुं छे. ते स्तवननी पहेली कडीमां 'इडरें अहमदाबाद आसाउलै बीबीपुर चिन्तामणी ए' पदथी बीबीपुर-चिन्तामणिपार्श्व० नो उल्लेख कर्यो छे. पू. उपा. श्रीभुवनचन्द्र म. टिप्पण करतां बीबीपुरने सरसपुर तरीके ज ओळखाव्युं छे.

तपा. शिवविजयजीना शिष्य शीलविजयजीअे सं. १६८२ मां रचेल

तीर्थमाळ्यां पूर्वदिशानां तीर्थोनुं वर्णन करतां कडी १५१मां - 'ओस वंशे शान्तिदास श्रीचिन्तामणि पूज्या पास' एम शान्तिदास शेठ द्वारा प्र. (प्रतिष्ठित थयेल) चिन्तामणिपार्श्वनाथनी स्तवना करी छे.

श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथभगवान

सं. १६५५मां तपगच्छ नायक पू. आ. श्रीविजयसेनसूरिजी म. चोमासा पछी कृष्णपुर-काळपुर पधार्या हता. त्यारे तेमना शिष्यो पैकी केटलाकने स्वप्न आव्युं के तमे ढींगवावाडानी जमीन खोदावजो. जमीन खोदता तेमांथी श्यामवर्णनी श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथ भगवाननी प्रतिमा नीकळी. तेनुं नाम पूज्यश्रीअे श्रीविजय-चिन्तामणिपार्श्वनाथ आप्युं. त्यारबाद सिकंदरपुरमां ज चातुर्मास करी एक भव्य जिनालयनिर्माणनो उपदेश आप्यो. श्रीसंघे विशाळ जिनालय बनाव्युं. सं. १६५६मां जे.सु. ५ ना दिवसे ते प्रतिमाजीनी आ.श्री सेनसूरिजी म.ना वरद हस्ते प्रतिष्ठा थई.

अमदावादना शेठ शान्तिदास पं. मुक्तिसागरजीनी कृपाथी सुखी थया हता अने अमदावादना सूबा बन्या हता. वर्द्धमान अने शान्तिदासने गुरु म.ना मुखेथी जिनमन्दिरनिर्माणना फळने जाणी देरासर बंधाववानी इच्छा थई. सं. १६७८ मां जीर्णोद्धार शरु थयो. [श्लो. ४५ थी ४९] जोतजोतामां ६ मण्डप, ३ शिखर, ३ गभारा, ३ चोकीथी युक्त भव्य जिनालय ऊभुं थयुं. जेनी आजुबाजु ५२ नानी देरीओ बनावी हती अने चतुर्मुख जिनालय हता. [श्लो. ५२, ५३] आ. जिनालय बनाववामां शेठे दीर्घदृष्टिथी काम लीधुं हतुं. मुस्लिमयुगमां जिनालयनी रक्षानुं काम विकट होई आक्रमण वखते प्रतिमाजीओने सरळताथी सुरक्षित स्थाने खसेडी शकाय ते माटे पोतानी हवेलीथी देरासर सुधी एक मोटी सुरंग बनावी दीधी. आ जिनालय 'वीरपाल' नामना (सोमपुरा) सलाटे बनाव्युं. [श्लो. ८४] सं. १६८२ मां (जे.व. ९ ना दिवसे) महो. विवेकहर्ष गणीनी अध्यक्षतामां महो. मुक्तिसागरगणिना हाथे परमात्मानी महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा थई. [श्लो. ६०]

आ जिनालयना निर्माण-प्रतिष्ठाना कार्यमां शेठे ९ लाख रू. नो खर्च कर्यो हतो. जेनी नोंध सं. १८७०मां रचायेल शान्तिदास शेठना रासमां क्वि

क्षेमवर्द्धनगणिए पण लीधेल छे ;

जी हो चिन्तामणि देहेरुं करी लाल, नवलखं नाणा रोक

जी हो प्रभु पधरावी हरखीया लाल, रवि देखी जिम कोक

(ढाळ ४ कडी १३)

अहीं खास नोंधवुं जोईए के ऐतिहासिक रास संग्रहमां पृ. ८नी टिप्पणीमां सम्पादके 'अमदावादनो इतिहास' पुस्तकमांथी नीचेनी नोंध लीधी छे :

“आ ५२ जिनालयनुं शिखरबंध देहरुं सरसपुर नामना पुराथी पश्चिमे आशरे खेतरवा एक्ने छेटे छे. अने कहेवामां आवे छे के नगरसेठ शान्तिदासे रू. ५/७ लाख खर्चीने (देहरुं) कर्युं हतुं. अे देहरानो तमाम घाट हठीसिंगना देहरा जेवो छे पण फेर एटलो ज छे के हठीसिंगनुं देहेरुं पश्चिमाभिमुखनुं छे अने आ देहेरुं उत्तराभिमुख छे. x x x

त्यारबाद सं. १७०१ मां औरंगझेबे आ जिनप्रासादने तोडावी एमां फेरफार करी तेने मस्जीद बनावी दीधी. आम थवाथी गुजरातमां मोटुं बंड थयुं. शान्तिदास शेठे सूबाना तोफाननी शाहजहांने अरजी मोकली. अमदावादना मुल्ला हकीमे पण पत्र लखी जणाव्युं के - 'आ घटना सूबाना हाथे थयेल हीचकारी घटना छे तेथी बादशाह शाहजहांए राज्यना खर्चे सं. १६८२ना जिनालय जेवुं नवुं जिनालय बनावी शेठने आपवानुं फरमान लखी मोकल्युं. देरासर पहेलाना जेवुं तैयार थई जता सं. १७०५-१७०६मां पुनः प्रतिष्ठा करावी.' ते प्रतिष्ठा कोना हाथे थई तेनी नोंध मळती नथी. 'राजनगरनां जिनालयो' पुस्तकमां पृ. ४ उपर - 'सं. १७०५मां जिनालय तैयार करवामां आव्युं परंतु मन्दिरमां गायनो वध थयेलो होवाथी फरी देरासर तरीके तेने स्वीकारवामां आव्युं नहीं' -आवी नोंध छे.

त्यार बाद थोडा वर्षे मुसलमानोनी आफत आवी. आ वखते शेठना पुत्र लक्ष्मीचंदना पुत्र खुशालचंद्रे गाडा मारफत प्रतिमाजीओने झवेरीवाडमां लाववानी व्यवस्था करी. तेमांथी ३ मोटा प्रतिमाजीने शेठ शान्तिदासनी स्मृतिमां बनावेल आदीश्वर जिनालयना भोंयरामां पधरावी' अने मूळनायक श्रीचिन्तामणि

१. प्रतिमाजीने झवेरीवाडानी नीशापोळमां जगवल्लभना भोंयरामां पधराव्या.

पार्श्वनाथने झवेरीवाडना शेट सूरजमलना बनावेला जिनालयमां पधराव्या. आ देरासर आजे वाघणपोळमां चिन्तामणिपार्श्वनाथना नामे प्रसिद्ध छे. आ सिवायनी अन्य प्रतिमाजीना स्थळान्तरनी नोंध अने उपरनी घणी-बधी बाबतो जैन परं.नो इतिहास भा.४ पृ. १३२ थी १३७, १४६ तथा २५४-२६० मां नोंधायेल छे. आ वातोनी खास नोंध शान्तिदास श्रेष्ठीना रासमां पण नथी.

शेट आणंदजी कल्याणजी पेढी द्वारा प्रकाशित थयेल 'राजनगरनां जिनालयो' पुस्तकमां प्रस्तुत इतिहास तो छे. विशेष सं. १६९४ मां मेन्डेलस्लो नामना प्रवासीअे भारतनी मुलाकात दरम्यान आ देरासरनी मुलाकात लीधी हती तेनी नोंधनो केटलोक अंश अहीं टांक्यो छे-

“आ देरासर निःशंकपणे अमदावाद शहेरना जोवालायक उत्तम स्थापत्यमांनुं एक हतुं. ते समये आ देरासर नवुं ज हतुं कारण के तेना स्थापक शान्तिदास नामे धनिक वाणिया मारा समयमां जीवता हतां. ऊंची पथ्थरनी दीवालथी बंधायेला विशाळ चोगाननी मध्यमां आ देरासर आवेल हतुं. x x x x प्रवेशद्वारमां बे काळा आरसना सम्पूर्ण कदना हाथीओ हता. तेमांना एक उपर स्थापकनी (शान्तिदासनी) मूर्ति हती.” x x x x

*

नगरशेठनो वंश-वंशावली

(१)ओसवालजाति-वृद्धशाखा-कुंकुमलोलगोत्र-सीसोदीया वंश

↓

(२)पद्म(पद्माशाह)-पद्मा

↓

(?)-जीवणी

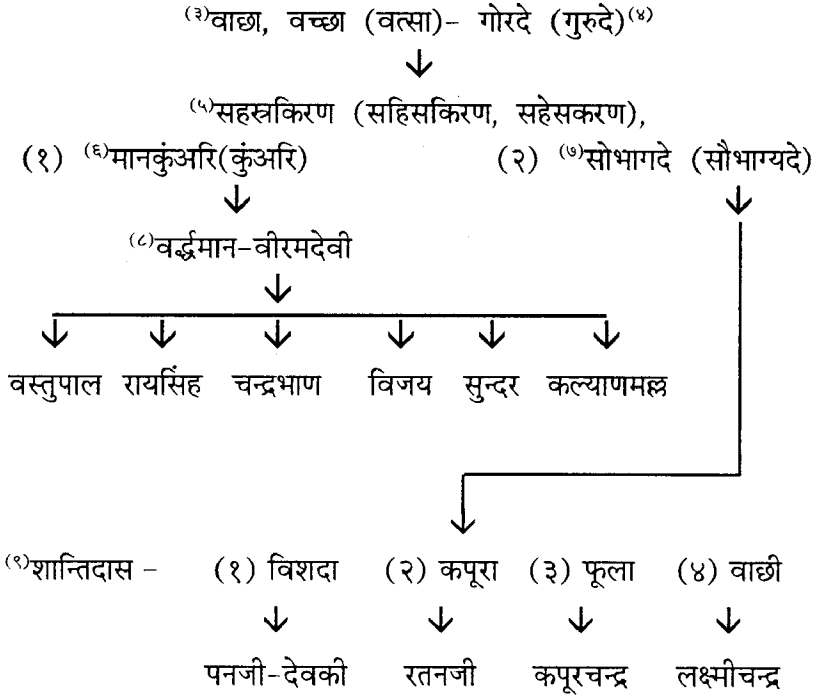
↓

सहलुआ-पाटी

↓

हरपति-पुनाइ

↓



- (૧) જ્ઞાતિ-શાખા-ગોત્ર-વંશની નોંધ 'અનુસન્ધાન ૧૮'માં પ્રકાશિત થયેલ-સિદ્ધાચલતીર્થ ચૈત્યપરિપાટી (પૃ. ૧૨૪)માં છે.
- (૨) જૈન પરં. ઇતિ. ભા.૪ પૃ. ૧૨૧ માં તેમનું નામ 'હરપતિ' જણાવે છે. જેને કર્તાએ તેમના પ્રપૌત્ર જણાવ્યા છે.
- (૩) જૈન પરં. ઇતિ ભા. ૪ પૃ. ૧૨૫ પર તેમનું બીજું નામ 'વાછા' જણાવે છે. તેમનું કુટુંબ વિજયસેનસૂરિજી મ. નું ઉપાસક હતું. પ્રશસ્તિસંગ્રહ પૃ. ૮ પ્રશસ્તિ નં. ૨૪માં 'વડા' નામ લખ્યું છે. પરં.ના ઇતિહાસમાં પદ્મા શાહ પછી વત્સા શાહની નોંધ છે. વચ્ચેની નોંધ નથી.
- (૪) પ્રશસ્તિસંગ્રહમાં (અમૃતલાલ મગનલાલ શાહ દ્વારા સમ્પાદિત) પૃ. ૮, ૨૪ લેખ નં. ૨૪, ૧૦૭ માં 'ગુરુદે' નામ લખ્યું છે.
- (૫) પ્રશસ્તિસંગ્રહમાં 'સહિસકિરણ' અને સિદ્ધાચલતીર્થચૈત્યપરિપાટીમાં 'સહસકરણ' નામ છે. તેઓ વિદ્યાપ્રેમી અને ધર્મપ્રેમી હતા. તેમણે

अमदावादमां पोतानुं स्वतन्त्र देरासर अने ज्ञानभण्डार बनाव्या हता. प्रशस्तिकारे पण 'चित्कोशं प्रतिमागृहं च तुलया मुक्तं मुदा योऽव्यधात्' [श्लो. २६] पदथी तेमना आ गुण तरफ अंगुलिनिर्देश कर्यो छे.

(I) तेमना द्वारा लखावायेल ग्रन्थोमांथी केटलाक ग्रन्थो प्राप्त छे. आ ग्रन्थनी लेखन प्रशस्तिमां प्रायः घणे स्थाने तेमना बन्ने पुत्रना नाम छे, ते परथी कही शकाय के तेमणे आ कार्य (ग्रन्थभण्डार) बन्ने पुत्रोनां जन्म पछी ज कर्या हशे.' (II) आ ग्रन्थो हाल सूरत-आगरा-लींबडी-पूना-अमदावादनां ज्ञानभण्डार/पुस्तकालयमां छे जेथी कही शकाय छे तेमना वंशजोए जुदा जुदा प्रसंगोए उपरना भण्डार वगेरेने ग्रन्थो आप्या हशे. बाकीनो संग्रह तेमना ज नामथी हाल 'लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर (L.D.) मां सुरक्षित छे.' - आ बन्ने नोंध जैन परं. इति. भा.४, पृ. १२३/१२४ पर छे.

- (६) जैन परं. इति. भा.४ पृ. १२४ उपर तेमनुं बीजुं नाम 'कुंअर' कह्युं छे.
- (७) जैन परं. इति. भा.४ पृ. १२४ उपर तेमनुं बीजुं नाम 'सौभाग्यदे' कह्युं छे.
- (८) वर्द्धमानना जीवननो विशेष कोई परिचय प्राप्त थतो नथी. परंतु उदार मनोवृत्तिवाळा ते पांच तिथिना पौषध करवा, सच्चित्तआहारनो त्याग, ब्रह्मचर्यनुं पालन, वगेरे नियमनुं पालन करवावाळा हता. अने तेमणे सम्यक्त्व सहित श्रावकना १२ व्रत पण ग्रहण कर्या हता. [श्लो. ३३, ३४]
- जैन परं. इति. भा.४ पृ. १२४ उपर विशेष नोंध-शेठ शान्तिदासे ज्यारे चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवाननुं नवुं जिनालय बनाव्युं त्यारे तेना दरेक काम तेमना भाई वर्द्धमाननी देखरेख नीचे थया हता.
- (९) शेठ शान्तिदासना जीवन-सत्कार्योनी नोंध आपता ग्रन्थो-आधारस्थळो सारा प्रमाणमां मळे छे. जेवा के शान्तिदास शेठनो रास, जैन परं.नो इतिहास भा.३-४, गुजरातनुं पाटनगर (ले. रत्नमणिराव जोटे), अमदावादनो इतिहास (ले. मगनलाल वखतचंद जोशी), प्रतापी पूर्वजो

(डुंगरशी धरमशी संपट), राजनगरनां रत्नो (वल्लभजी सुंदरजी) गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीनो इतिहास (गुज. वर्ना. सोसायटी) वगरे.

अहीं तेथी ज शेठ शान्तिदासना जीवननी कशी पण वात जणावी नथी मात्र केटलीक विशेष नोंध अने एमनां करेल कार्योनी नोंध मूकी छे.

- श्लो. ३९ सं. १६६८ - कनडदेशमां (कर्णाटकमां?) श्रीहीरविजयसूरिना पादुका सहित स्तूपनी प्रतिष्ठा
- श्लो. ४० सं. १६६९ - शत्रुंजयतीर्थ उपर महोत्सवपूर्वक आदेश्वरभगवानना परिकरनी प्रतिष्ठा
- श्लो. ४१ १६७५ - शत्रुंजयतीर्थनी संघपति बनी विधिपूर्वकनी यात्रा
- श्लो. ४५ १६७८ - प्रासादनिर्माण (प्रारंभ?)
- श्लो. ६० १६८२ - महोत्सवपूर्वक वाचक मुक्तिसागरगणिना हाथे श्रेयांसनाथ प्रमुख शताधिक बिम्बोनी प्रतिष्ठा
- श्लो. ६३ १६८६ - महो. मुक्तिसागर गणिने गणाधिपपदे बिराजमान करवा. (सागरगच्छ स्थापना ?)
- श्लो. ६५ १६८७ - महादुष्काळमां गरीब लोकोने अन्नादिनुं दान
- श्लो. ६६ १६९० - शत्रुंजयतीर्थनी संघपति बनीने यात्रा.
- श्लो. ६७ १६९३ - पादविहार-विहार प्रमुख छ'रीनुं पालन करवा पूर्वकनी शत्रुंजय यात्रा.

आ सिवाय अनु. १८ मां प्रगट थयेल सिद्धाचलतीर्थचैत्यपरिपाटीना मुद्दा नं. ९मां तेमणे तीर्थाधिराज तरफ जवाना रस्ता पर बनावेल 'वाव'नी नोंध छे.

तेओ जे मोगल बादशाहना सम्पर्कमां आव्या तेमांना शाहजहां, जहांगीर, मुरादबक्ष, औरंगझेब पासेथी शत्रुंजय-गिरनार-आबु-तारंगा-केसरियाजी-अने श्रीचिन्तामणिजी जेवा तीर्थनी रक्षाने लगतां फरमानो मेळव्यां हतां. [जैन परं. इति.]

सं. १६८६ मां मुक्तिसागरगणिनी आचार्यपदवी थई. सागरगच्छ स्थपायो त्यार बाद सागरगच्छनी वृद्धि माटे शेठे ११ लाख रू. खरच्या. सागरगच्छना

उपाश्रयो पण सुरत, राधनपुर, अमदावाद, पाटण वगेरे स्थळोअे बनाव्या.
क्षेमवर्द्धन गणीना शब्दोमा-

'जीहो वेलिया विही प्रभावना लाल, अग्यार लाख द्रव्य थाय
जीहो सागरगच्छमां आपीया लाल, गुणीजन कीरत गाय.

(ढा. ४, कडी १४)

वळी रामविजय-शान्तिजिनरासमां-

संवत सोल ल्यासीया(छ्यासीया) वर्षे, आचारज पद थापीया रे,
श्रीराजसागरसूरि नाम जयंकर, सागरगच्छ दीपाया रे... ३३

साह शिरोमणि सहसकिरणसुत, शान्तिदास सुजांण रे,
जस उपदेशे बहु धन खरच्युं, लख ईग्यार प्रमाण रे... ३४ (प्रशस्ति)
आ रीते आ बाबतनो उल्लेख करे छे.

सागरगच्छनी स्थापना अने मुक्तिसागरगणिनी पदवीमां पण शेठनो खूब मोटो फळो हतो. शान्तिदास शेठनो रास अने जैन परं. इतिहास - चिन्तामणिमन्त्रनी साधना, बादशाहनी मुलाकात, राज्यमान, उपाध्याय पद, आचार्यपदप्रदान, जिनालय प्रतिष्ठा, सागरगच्छ स्थापना वगेरे बाबतोमां मतान्तर दर्शावे छे जेनो निर्णय विद्वानो ज करी शके.

शेठना स्वजन सम्बन्धी विगत आपतां प्रशस्तिकार ४ पत्नी-विशदा, कपूरा, फूला, वाळीना अनुक्रमे ४ पुत्रो पनजी-रतनजी-कपूरचन्द्र-लक्ष्मीचन्द्र नाम आपे छे. जैन परं. इति. भा.४ - पृ. १३९ पर तेमना पुत्रना नाम जणावतां नीचेनी विगत नोंधी छे : (१) प्रशस्तिकार (?शेनी प्रशस्ति हशे ? के प्रस्तुत प्रशस्ति ज?) ४ पुत्र जणावे छे ते मनजी, रतनजी, कपूरचंद, लक्ष्मीचंद. (२) शीलविजयजी रासमां-रतनजी, लक्ष्मीचंद, माणेकचंद, हेमचंद एम ४ पुत्रो. (३) क्षेमवर्द्धनगणी रासमां मनजी, रतनजी, लक्ष्मीचंद, माणेकचंद, हेमचंद एम ५ पुत्रो. (४) कृष्णसागर गणी रतनजी, लक्ष्मीचंद, माणेकचंद, हेमचंद अेम ४ पुत्रो. (a) नगरशेठना घरमां रहेल हस्तप्रतनी पुष्पिकामां धनजी-रतनजी-लक्ष्मीचंद-माणेकचंद-हेमजी एम ५ पुत्रोना नाम जणावे छे. (६) ज्यारे 'गुजरातनुं पाटनगर' पुस्तकमां पनजी, रतनजी, कपूरचंद, लक्ष्मीचंद, माणेकचंद, हेमचंद अेम ६ पुत्रोनां नाम लख्यां छे.

शेठना जन्मनी के शेष जीवननी नोंध रासमां नथी. मालतीबहेन शाह शेठनो जन्म सं. १६४१-४६नी आसपास होवानुं अनुमान करे छे, तेमनो स्वर्गवास सं. १७१६मां थयो होवानुं माने छे. ज्यारे राजसागरसूरिनिर्वाण रासना उल्लेख मुजब तेमनो स्वर्गवास सं. १७१५ मां थयो हतो. आ नोंध राजनगरना' जिनालयो - पृ. १९३ उपर छे.

*

आचार्य राजसागरसूरिजी-

↓

आनन्दविमलसूरिजी

↓

विजयदानसूरिजी

↓

हीरविजयसूरिजी

↓

विजयसेनसूरिजी

↓

राजसागरसूरिजी

प्रशस्तिकारे [श्लो. ७४ थी ८०मां] राजसागरसूरिजीनी गुरुपरम्परा उपर मुजब जणावी छे. जैन परं. नो इति. भा.४ प्रकरण ५५मां तेमनी गुरुपरम्परा जुदी जणावी छे. सं. १६७४ मां रचायेल 'नेमिसागरनिर्वाणरास'मां कर्ता कृपासागरे पण लगभग परं. ना इतिहास जेवी परम्परा जणावी छे अेमां 'जीवर्षि गणि'नुं नाम नथी. वळी,

लक्ष्मीसागरसूरिजी (तपा.)

↓

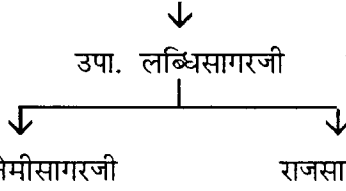
उपा. विद्यासागरजी

↓

जीवर्षिगणी

↓

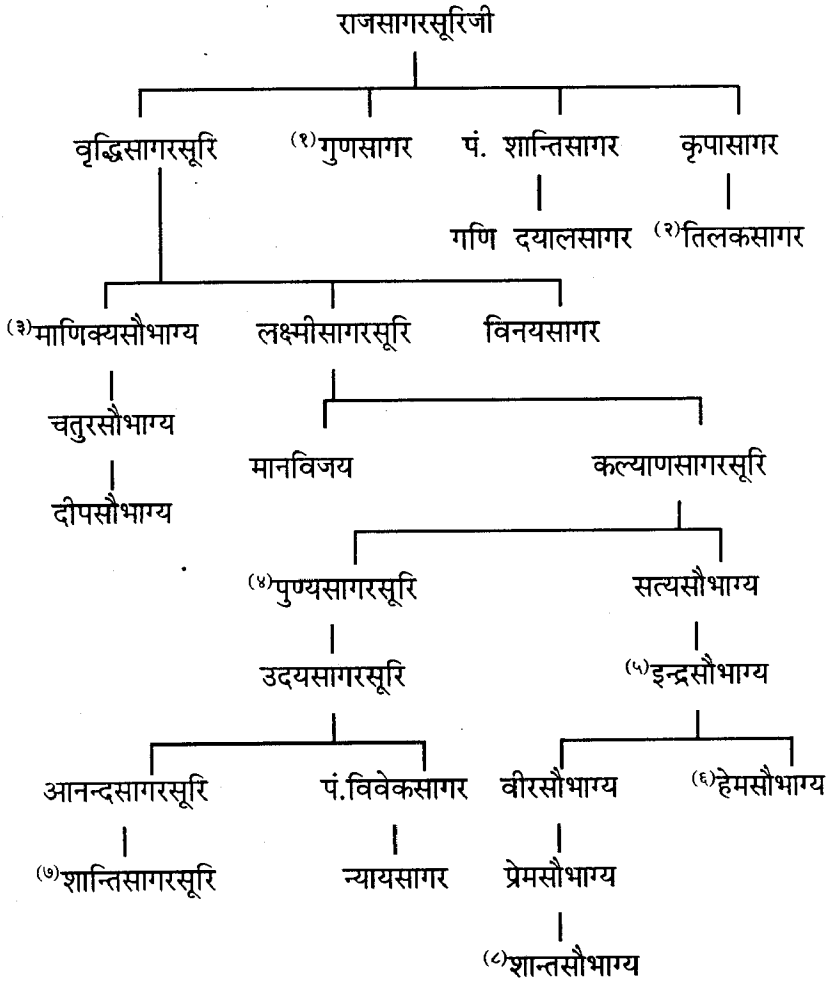
उपा. धर्मसागरजी (१)



- (१) उपा. धर्मसागरजी-जीवर्षिगणिना शिष्य हता एवं महो. भावविजये 'षट्त्रिंशज्जल्प' ग्रन्थमां लख्युं छे. (जैन. परं.नो इति. भा.३, पृ. ६९७) परंतु महो. धर्मसागरजी पोते रचेल कल्पकिरणावली, प्रवचन परीक्षामां 'हीरविजयसूरिजी म. ने गुरु तरीके जणाव्या छे.
- (२) उपा. नेमिसागरजी अने आ. राजसागरसूरिजी सिरपुर (सिंहपुर)नगरना शेठ देवीदास अने तेनी पत्नी कोडमदेना पुत्र हता. तेमनुं गृहस्थ अवस्थानुं नाम 'नानजी' अने आचार्यश्रीनुं 'मेघजी' हतुं. नेमिसागर गुरु निर्वाण रास ढाळ ९ कडी १२२ मां मुक्तिसागर गणिने (राजसागरसूरिजीने) तेमना मोटा भाई अने मानसागरमुनिने तेमना नाना भाई कहा छे. जैन. परं.ना इति. पृ. ७५० उपर - 'उपा. धर्मसागरजीअे कोडिमदे अने तेना बन्ने पुत्रोने दीक्षा आपी उपा. लब्धिसागरना शिष्य बनाव्या. शाहजहांअे एमने 'वादिजीवक'नुं बिरुद आप्युं हतुं. तेमनो स्वर्गवास १६७४मां थयो. ते वखते तेमना माता हयात हता. तेवी नोंध छे.
- (३) 'बाळपणथी तेजस्वी-बुद्धिशाळी हता, तेमने पद्यावती देवीनी सहाय हती' तेवी नोंध जैन परं.नो इति. भा.३ पृ. ७५१ उपर छे. बाळपण-शिष्यपरम्परा-जीवन-काळधर्म वगैरे विशेष विगतो माटे तपा. सागरशाखाना हेमसौभाग्ये बनावेल 'राजसागरसूरिनिर्वाणरास' अने तिलकसागरे सं. १७२१ मां बनावेल 'राजसागरसूरिनिर्वाणरास' जोवा जोईअे. तेमना द्वारा रचायेल 'केवली स्वरूप स्तवन' कडी. ६८ मळे छे. अमदावाद - पं. प्र.वि.सं.मां रहेली 'हितोपदेश'नी प्रतमां 'मुक्तिसागरजी'ने तपगच्छमांथी काढी नाखवामां आव्या तेनी नोंध छे. [प्रशस्ति संग्रह पृ. १९०]

*

आचार्य राजसागरसूरिजीनी शिष्य परम्परा जैन गुर्जर कविओ भा. १-१०मां तेमना शिष्यादि द्वारा थयेल रचनाओने जोतां नीचे मुजब जोवा मळे छे.



- (૧) તેમની સં. ૧૬૮૩ માં રચાયેલ 'બારવ્રતની સજ્જાય' પ્રાપ્ત થાય છે.
- (૨) સં. ૧૭૨૧ માં 'રાજસાગરસૂરિ નિર્વાણરાસ' બનાવ્યો.
- (૩) વૃદ્ધિસાગરસૂરિજીના સન્તાનીય છે. તેમણે સં. ૧૭૭૯ માં રચેલ 'ચિત્રસેન પદ્માવતી રાસ' અને સં. ૧૬૪૭ માં રચેલ 'વૃદ્ધિસાગરસૂરિ નિર્વાણરાસ' છપાવેલ છે.
- (૪) તેમણે 'મહાવીરવિજ્ઞસિષ્ટત્રિશિકા' સંસ્કૃતમાં રચેલ છે.
- (૬) સં. ૧૭૨૧ માં 'રાજસાગરસૂરિ નિર્વાણરાસ' બનાવ્યો.

- (७) तेमणे लखेल 'उपदेशमाळ्य-बालावबोध'नी प्रत मळे छे.
- (८) सं. १७८७ मां पाटणमां तेमणे 'अगडदत्त ऋषिनी चोपाई' बनावी छे.
- (४) भायखला-शेठ मोतीशाहे बनावेल आदीश्वर जिनालयना परिसरमां आवेल दादावाडीमां देरी नं.३मां सं. १८४० वर्षे महा सु. १३ बुधवारे प्रतिष्ठित थयेल 'पुण्यसागरसूरिजी'नी पादुका छे. तेनो लेख नीचे मुजब छे :
'सं. १८४० वर्षे माह सुदि १३ शने (तेरसने) वार बुधे महमई बींदरे भट्टारक श्रीपुण्यसागरसू. समस्त प्रतिष्ठितम् ।

सत्यसौभाग्य-

कर्तांते प्रशस्तिमां श्लो. ४८ अने श्लो. ८५ मां पोताना गुरुनुं नाम 'श्रीसौभाग्य' जणाव्युं छे. ते कोण हता, कोना शिष्य हता ? ते जाणवा मळतुं नथी. वळी जैन गुर्जरकविओ भा. ४-२५३, ३०४ उपर कर्तानो परिचय आपता तेमने 'कल्याणसागर'ना शिष्य जणाव्या छे. तेथी कर्ता अने अनी गुरुपरम्परा-शिष्यपरम्परा विषे वधु संशोधन करवुं पडे अेम लागे छे.

'सं. १६८७ मां सर्वज्ञशतक-सटीक प्रमाणिक छे के नहीं ? - आ बाबतमां राजसभामां जाहेर शास्त्रार्थ करवानी वात आवी त्यारे आ. राजसागरसूरिजीअे पोताना पक्ष तरफथी शास्त्रार्थ करवा माटे पं. सत्यसौभाग्यगणिने नियुक्त कर्या हता.' [जैन परं. इति भा.३ पृ. ७४६]

प्रतिपरिचय

सूरत-नेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरि ज्ञानभण्डारमां झेरोक्ष रूपे सचवायेल संवेगी उपाश्रय (हाज पटेलनी पोळ)नी आ प्रत छे. ८ पाना छे. लेखनप्रशस्ति (पुष्पिका)नुं पानुं नथी. दरेक पानामां लगभग ११ लीटीओ अने ३०-३५ अक्षर छे. पडिमात्रामां लखायेल आ प्रतिना अक्षर सुवाच्य छे.

लेखके ग्रन्थ प्रारम्भमां नमस्कार वखते पोताना गुरु सत्यसौभाग्यगणिने नमस्कार कर्या छे. तेथी कही शकाय के तेमना शिष्य परिवारमांथी कोईअे आ प्रत लखी हशे. अथवा प्रतनी पुष्पिका सम्पूर्ण मळे तो तेनो निर्णय थइ शके.

॥ श्री बीबीपुरमण्डनश्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथचैत्यप्रशस्तिः ॥

सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

॥८०॥ महोपाध्याय श्री६ सत्यसौभाग्यगणिगुरुभ्यो नमः ॥

निःप्रत्यूहमुपासतां कृतधियः श्रीपार्श्वचिन्तामणे-

रुत्फुल्लोत्पलभासि वासितजगत्पादद्वयं सदगुणैः ।

साम्राज्यं विदधात्यसद्विषदलं प्रास्ताखिलोपप्लवं,

यो द्वैराज्यकथामपि त्रिभुवने निर्मूलमुन्मूलयत् ॥१॥ [शार्दूल०]

उद्धर्ता जगतीत्रयीमिति विदन् जिह्वाय भोगीश्वर-

श्लेष्ता ध्वान्तचमूमहर्निशमिति स्पष्टं च घस्त्रेश्वरः ।

कल्प्याकल्प्यपदार्थसार्थमसकृद् दातेति देवद्रुमो,

यस्मिन् जातवति क्षितौ स भगवान् श्रीआश्वसेनिः श्रिये ॥२॥ [शार्दूल०]

मातङ्गाश्वर्तुचन्द्र(१६७८)प्रमितशरदि तौ मानतुङ्गाख्यमेनं,

प्रासादं वर्द्धमानः ससृजतुरतुलं शान्तिदासश्च शुभ्रम् ।

भास्वद्वीबीपुरे सत्तपगणतरणीपार्श्वचिन्तामणेर्यं,

श्रीमद्द्व्यांगीरराज्ये युवनृपतियुते तस्य कुर्मः प्रशस्तिम् ॥३॥ [स्मधरा०]

अस्ति स्वस्तियुतः प्रशस्तकमलाचेतोविनोदास्पदं,

देशः पेशलकौशलप्रविलसल्लोकान्द्रुतो गुर्जरः ।

यस्यैकैकगुणं परे जनपदाः स्वीकृत्य तं तं यशः-

प्राग्भारं जननिर्मितं गुणनिधेरासेदिवांसः स्फुटम् ॥४॥ [शार्दूल०]

अस्मिन्नुहामधामद्विजपतिवदनादर्शनक्षुभ्यदन्त-

वृत्तिस्वाहाशनौघाय(व)गणिततविषंऽहिम्मदावादसञ्चः ।

भाति द्रङ्गः सरङ्गः कथयति जनता चन्द्रबिम्बेऽत्र यस्या-

ऽत्युच्चप्रासाददण्डाहतिभवविवराकाशदेशं कलङ्कम् ॥५॥ [स्मधरा]

अस्मिन् बीबीपुराख्यं प्रमुदितजनभृदरम्यहर्म्यध्वजाली-
छायाच्छद्यप्रसर्पद्भुजगततिवधूगोपितोद्यन्निधानम् ।
शक्रेण स्वं सुराद्य(दयं) पुरममलधिया त्यक्तुकामेन साक्षाद्
वस्तुं बद्धस्पृहं सद्विशदतरगुणं भाति शाखापुरं तत् ॥६॥ [स्रग्धरा]

किञ्च-श्रीमान् बब्बरपार्थिवो गजघटासङ्घट्टदुस्सञ्चरं,
प्राज्यं राज्यमपालयज्जनगणत्राणैकबद्धोद्यमः ।
माद्यद्योर्बलदर्पदर्पितमनःप्रत्यर्थिसीमन्तिनी-
वैधव्यव्रतदानकर्मगुरुतां सार्वत्रिकीं यो दधे ॥७॥ [शार्दूल०]

तस्मादाविरभूद्यथा दशरथाद् रामः प्रतापांशुमान्,
सत्र्यायैकमतिर्हं (हुं)मायुनृपतिदुर्वारवीर्योत्रतिः ।
शैलेभ्यः पततां परक्षितिभृतां श्वासानिलैर्बिभ्यतां,
येन द्रागददताऽशनं फणभृतां प्राणोपकारः कृतः ॥८॥ [शार्दूल०]

सूनुस्तस्य महीभृतः समभवद् भूमण्डलाखण्डलः,
शाहिश्रीमदकब्बरक्षितिपति स्फूर्ज्जत्प्रभाहर्पतिः ।
दानेनाऽर्थिभिराजिभिः परगणैः शूकेन हिंस्रैः सृजन्,
मुक्तं वीरकथामयं जगदिदं वीरस्त्रिधा यो व्यधात् ॥९॥ [शार्दूल०]

यस्योद्यद्दानधाराधरपटलसमुद्भूतसौवर्णधारा-
सन्दोहप्लाव्यमानः क्वचिदपि लभते नाऽऽश्रयं दौस्थपङ्कः ।
नश्यद्भिर्द्राग् विपक्षक्षितिपतिभिरतिस्पृह्येवोह्यतेऽसा-
वृत्सृज्याऽमुं समन्तात्कशिपुगतभरं सानुमत्काननेषु ॥१०॥ [स्रग्धरा]

तस्य श्रीमदकब्बरक्षितिपतेर्देदीप्यते साम्प्रतं,
सूनुः श्रीइसलामशाहिनृपतिः प्रोत्सर्पिकीर्तिप्रथः ।
भूभारोद्धरणैकधीरभुजभृत् कुर्वन्ति यस्य द्विषो,
द्वन्द्वेऽत्युग्रशरप्रहारविधुरा देवाङ्गनानां मुदम् ॥११॥ [शार्दूल०]

दुग्धाम्भोधिभवत्तरङ्गविलसद्दिण्डीरलक्ष्मीमुष-
स्साम्याभावसमुत्थदर्पकलिता यत्कीर्तयः स्पर्द्धिनः ।

चन्द्रस्याऽङ्कमृगस्य केवलमिमाः काङ्क्षन्ति नो कर्हचित्-

नेदीयःस्थितसिंहिकासुतभवत्राशं मरुद्वर्त्मनि ॥१२॥ [शार्दूल०]

क्षोणीशः प्रसरी सरद्गुणनिधिर्देदीयमानो मनो-

भीष्टार्थं प्रणयिव्रजस्य सुख(ष)मां देधीयतेऽसौ चिरम् ।

यद्भूभङ्ग इह क्षितौ गुरुतुलां धत्ते सदा शिक्षि[तु?]-

मुन्मत्तक्षितिभृत्कुलं विनयितामज्ञातपूर्वा जवात् ॥१३॥ [शार्दूल०]

सूनुः शाहिजिहान इत्यभिधया जेजेति यस्य स्फुटै-

लोकैर्भूतलगैर्विनिश्चितभविष्यद्राज्यभारो गुणैः ।

यस्य द्राक् करवाल एष फणभृत्मुख्यं गुरुं बाल्यतो,

निर्मायेव करे विराजति परप्राणैकवृत्तिं दधत् ॥१४॥ [शार्दूल०]

व्योमाधीशमवेक्ष्य बुद्धिनिलयं मूर्तीश्वरत्वं गतं,

दृष्ट्वा चाऽसितसंयुतं गगनगं स्वभानुमादेशिभिः ।

यज्जन्मन्यभितः प्रमोदकरणे साम्राज्यमेकान्ततः,

सन्दिष्टं विनिशम्य लोकनिचया निश्चिन्वतेऽत्रैव तत् ॥१५॥ [शार्दूल०]

यस्योद्यद्भुजवीर्यसंश्रुतिगलद्धैर्यस्य जम्भद्विषो,

भीत्या शून्यहृदोऽयमागत इहाऽथो किं विधेयं जवात् ? ।

इत्याकर्ण्य वचोनिगूढविषयं पार्श्वे निषण्णा शची,

भीता श्लिष्यति वेपमानकरणा स्वैरं प्रियं सद्यनि ॥१६॥ [शार्दूल०]

यत्राऽभिषेणयति वर्मितवीरवारे,

वाहावलीपदखुरोद्धतधूलिवृन्दैः ।

व्यासैर्दिवं खलु दिवाऽपि तमां सृजद्भिः

खद्योततां दिनमणिर्बिभराम्बभूव ॥१७॥ [वसन्त०]

आश्लिष्यन्नहितेन्द्रिरामवसनाः प्रौढारिकान्तां हसन्,

दारिद्र्यं भुवि रोदयन् परगणे रक्षोवपुर्दर्शयन् ।

निष्कोशं रचयन् कृपाणमनयात्रं(त्र)स्यन् धरां रञ्जयन्,

द्विडरक्तैर्बुधवाक्सु विस्मयमवन् शान्तीभवन्सेवके ॥१८॥ [शार्दूल०]

निशेषोरुकलानिधिर्नवरसानाखण्डलाभीप्सितान्,
 संसारद्रुमसस्यमेकसमयं यः स्फारयत्यञ्जसा ।
 क्रामन् शाहिजिहानपुत्रमणिना तेनाऽसकृद्भूतलं,
 जीयात् श्रीइसलामशाहिनृपतिः साहस्रचूडामणिः ॥१९॥ [शार्दूल०]

तस्याऽमात्यशिरोमणेः शुचिमतिप्रागल्भ्यकाव्यस्य ता,
 आसफ्खान इति प्रसिद्धिमयतः कुर्वीत को न स्तुतीः ?
 दिग्चक्रे विजितेऽपि यस्य सुभटाकीर्णे चतुर्भिः स्फुटो-
 पायैः सैन्यमिदं पिपति भुवनं शोभाकृते भूभृतः ॥२०॥ [शार्दूल०]

किञ्च- श्रीमानूकेशवंशो विशदतररमाजन्मभूर्भासतेऽसौ,
 तस्मिन् पद्मावसत्या जगति सुविदितः पद्मनामा बभूव ।
 पद्मादेवीति विष्णोरिव समजनि सद्देहिनी शुद्धशीला,
 भास्वद्विश्वत्रयस्याप्युपकृतिचतुराधारतां बिभ्रतोऽस्य ॥२१॥ [स्वधरा]

किञ्च- सूनुस्तयोः स(श)मधरो मधुरोचितश्री-
 श्चन्द्रेण यस्य मधुरो(रा?)ऽधिकमाबभासे ।

विस्मेरयत्कुवलयं कलितः कलाभि-
 ब्राह्मीव तस्य दयिता खलु जीवणीति ॥२२॥ [वसन्त०]

पुत्रस्तयोः सहलुआ इति नामधेयो,
 गेयो बभूव सुजनैः सुगुणैरमेयः ।

सद्बुद्धिवैभववितर्कितसत्प्रमेयः,
 पाटीति तस्य दयिता गिरिजेव शम्भोः ॥२३॥ [वसन्त०]

तन्नन्दनो हरपतिस्सुमनोऽभिनन्द्यः,
 पूनाइरित्यभिधया विदिता सतीयम् ।

यं प्राप्य युक्तमसकृद्दयिता व्यराजत्,
 सर्वत्र सर्वविबुधव्रजवन्दनीया ॥२४॥ [वसन्त०]

तद्देहजः समजनिष्ठ गरिष्ठलक्ष्मी-
 र्वच्छाभिधो जगति लब्धशुभप्रतिष्ठः ।

यद्देहिनी शुभसतीशतमौलिरत्नं ।

सा गोरदेरिति जगद्विदिता बभूव ॥२५॥ [वसन्त०]

जाग्रद्भाग्यनिधिः कृताखिलविधिः सत्प्रीतिकृत्सन्निधिः,

शुभ्राचारविचारचारुकरणप्राप्तप्रतिष्ठास्पदम् ।

स्फूर्जत्कीर्तिगणः सहस्रकिरणः सूनुस्तयोः साधुराट्,

चित्कोशं प्रतिमागृहं च तुलया मुक्तं मुदा यो व्यधात् ॥२६॥ [शार्दूल०]

तस्यादिमा कुंअरिरित्यभिख्या,

सोभागदेरित्यभिधा द्वितीया ।

पत्न्यावभूतां पुरुषोत्तमस्य,

रूपे इवाम्भोधिसमुद्भवायाः ॥२७॥ [इन्द्रवज्रा]

पूर्वेव पूर्वाऽजनि वर्धमानं,

प्रद्योतनं द्योतितभूमिपीठम् ।

गुणैर्वपुष्मन्तमिव द्वितीया-

ऽसोष्टाऽर्जुनांशुं भुवि शान्तिदासम् ॥२८॥ [इन्द्रवज्रा]

द्वौ भ्रातरौ तावसमौ समीक्ष्य,

भाग्योदयै रञ्जितनागरौघौ ।

वितर्कयन्तीह जनाः पुनः क्षितौ,

मुदाऽवतीर्णौ किमु सीरिशार्ङ्गिणौ ॥२९॥ [इन्द्रवज्रा]

किञ्च- वीरमदेवी नाम्ना, धाम्ना देवी च वर्द्धमानस्य ।

साधोस्तस्य बभूव, प्रिया षडेते च तत्पुत्राः ॥३०॥ [आर्या०]

पौरस्त्यौ(यो) वस्तुपालो भुवि सदुपकृती रायसिद्धो द्वितीयः,

स्फूर्जल्लक्ष्मीस्तृतीयः प्रथितगुणगणश्चन्द्रभाणः प्रतीतः ।

तुर्यः प्राप्तप्रतिष्ठो विजय इति तथा पञ्चमः सुन्दराख्यः,

षष्ठः कल्याणमल्लः कृतसुकृतधियो धर्मिषु प्राप्तरेखाः ॥३१॥ [स्वधरा]

पौत्रौ च वस्तुपालस्य, पुत्रौ तस्याऽमितौजसौ ।

अमीचन्द्र-लालचन्द्रौ, सूर्याचन्द्रमसौ यथा ॥३२॥ [अनुष्टुप्]

क्षेत्रेषु सप्तसु सदा वपतः स्वसारं,

लक्षप्रमं कृपणदीनजनेषु चोच्चैः ।

यस्योद्भवोऽनुभवति प्रविलासिकीर्त्या,

शुभ्रीकृतत्रिभुवनस्य फलेग्रहित्वम् ॥३३॥ [वसन्त०]

आराध्नोति प्रकामं प्रथितगुणगणः पौषधैः पञ्चपर्वी,

कुर्वन् ब्रह्मव्रतेन स्वममलकिरणं सर्वसच्चित्तवर्जी ।

बिभ्रत्सम्यक्त्वरम्यारुणगणित(१२)लसद्भामगेहिव्रतानि,

प्रोच्चैर्यो वद्धमानः स जयतु सततं श्रीनिवासैकभूमिः ॥३४॥ [स्त्रग्धरा]

शान्तिदासगृहिणी रमणीया-नामतोऽपि विशदा भुवि रूपा ।

सूनुरद्भूतगुणोदधिरासी-न्मूर्तभाग्यनिधिवत्पनजीकः ॥३५॥ [स्वागता]

तस्य शस्य कुमुदोज्ज्वलकीर्त्तः, प्रस्फुरद्विनयमञ्जुलमूर्तेः ।

देवकीति दयिता दलिताघा, सद्दिवेककलितान्तरभावा ॥३६॥ [स्वागता]

धत्से सखे ! मनसि किं कलिकालचिन्तां,

रे दुःषमे ! किमु दधासि च दुःखितां त्वम् ।

विघ्ना भयं व्रजथ किं ? ननु किं न वेत्सि ?,

जातोऽस्मदुन्नतिहरो भुवि शान्तिदासः ॥३७॥ [वसन्त०]

गुणिनि गुणज्ञे गुणवति, दानिनि मानिनि च वैरिणां सदसि ।

कृतकृतयुगचरितेऽस्मिन्, कलिकालः कालवदनोऽभूत् ॥३८॥ [आर्या]

प्राप्तः स वणिज्यायै, स्याहपुरेऽचीकरत् कनडदेशे ।

श्रीहीरविजयसूरेः, सपादुकं स्तूपमिभरस [१६६८]मितेऽब्दे ॥३९॥ गीतिः

श्रीशत्रुञ्जयतीर्थे, मूलार्चा परिकरं महसनाथम् ।

यः प्रत्यतिष्ठिपदति-प्रमदानन्दर्तु [१६६९]गणितेऽब्दे ॥४०॥ गीतिः

बाणाश्वराज [१६७५]मितविक्रमवत्सरेऽलं,

यात्रां विशुद्धविधि सिद्धगिरेर्विधाय ।

साद्धं सुसङ्घनिकरैर्भरतेशवद्यो,

द्रव्यव्ययेन भुवि सङ्घपतिर्बभूव ॥४१॥ [वसन्त०]

यः सौभाग्यनिधिः क्षितीशसदसि प्राप्तप्रतिष्ठोऽन्वहं,

मत्तानेकप-चञ्चलाश्वविलसद्राजप्रसादोल्बणः ।

निःशेषाङ्गिसमूहदुःखविलयस्फूर्जत्सुखं(ख)प्रापणो-

द्युक्तोऽसौ जयताच्चिरादहिमदावादोल्लसद्भूषणम् ॥४२॥ [शार्दूल०]

शान्तिदासस्य जयतात्, कोऽपि शौर्यार्णवो नवः ।

मिथ्यात्वौर्वानलबलं, शमयत्येष यत्कलौ ॥४३॥ [अनुष्टुप्]

किञ्च- सन्निधौ शान्तिदासस्य, सर्वकार्यधुरन्धरौ ।

वाघजी-कल्याणसञ्जौ, जीयास्तां साधुसिन्धुरौ ॥४४॥ [अनुष्टुप्]

किञ्च- इभतुरगनृप[१६७८]मितेऽब्दे, प्रासाभ्यां भाग्यवत्परमकाष्ठाम् ।

साक्षाच्चतुर्दिगागत-विभवैर्द्ध(र्ध)नदायमानाभ्याम् ॥४५॥ [आर्या]

सश्रद्धवर्धमान-श्रद्धाकमनीयशान्तिदासाभ्याम् ।

सुकुटुम्बाभ्यां ताभ्यां, गृह्णद्भ्यां सम्यगुपदेशम् ॥४६॥ [आर्या]

व्याख्यासुधोदधीनां, पवित्रचारित्रचारुचरितानाम् ।

अवदातबुद्धिबेडा-तीर्णागमतोयराशीनाम् ॥४७॥ [आर्या]

छात्रीकृतधिषणानां श्रीश्रीसौभाग्यसद्गुरुवराणाम् ।

मुखकमलात्केसरमिव, सुवर्णरुचिरं मनःप्रीत्या ॥४८॥ [आर्या]

श्रुत्वा विहारनिर्मिति-सम्भवफलनिकरसङ्गमोत्कर्षम् ।

बीबीपुरगृह्यायां प्रासादः कारयामासे ॥४९॥ पञ्चभिः कुलकम् [आर्या]

यस्मिस्तोरणपुत्रिका अनुकृतस्वःसुन्दरीविभ्रमाः,

के के न स्पृहयन्ति वीक्ष्य जनिताशंसा भुवि?(व?)श्शर्मणे ।

द्वारे यस्य च पञ्चपत्रमतुलं प्रासादरक्षाविधौ,

दक्षं भाति चतुश्चतुष्ककलिते देवद्रुकल्पं कलौ ॥५०॥ [शार्दूल०]

उच्चैः सोपानपङ्क्तिः शिवगतिगमनं प्राणिनां व्यञ्जयन्ती,

साक्षात् श्रीपार्श्वभर्तुश्चरणसरसिजद्वन्द्वसेवापराणाम् ।

यस्य प्रारब्धसङ्गीतकनिकरलसद्वामपाञ्चालिकाली-

च्छद्मच्छत्राप्सरोभिर्भृशमुपदिशतः स्वर्गसद्वर्णिकां द्राक् ॥५१॥ [स्वर्धरा]

आद्योऽसौ मेघनादस्तत इह विदितः सिंहनादो द्वितीयः,
सूर्यान्नादस्तृतीयो विशदतररमो रङ्गनामा तुरीयः ।

खेलाख्यः पञ्चमोऽयं तदनु च गदितो गूढगोत्रेण षष्ठो,
यत्रे(त्रै)ते मण्डपाः षट् वसतय इव सद्धर्मभूभृद्गुणानाम् ॥५२॥

[स्वधरा]

प्रासादो जिनसद्यभिः प्रविलसत्शृङ्गैर्द्विपञ्चाशता,
व्यासश्चारुचतुर्मुखाहृतगृहैर्युक्तश्चतुर्भिस्तथा ।

तावद्विर्धरणीगृहैर्जनबृहद्विम्बान्वितैश्चोल्बणः,

सामन्तादिभिरावृतो नृप इव स्वैरं स्थितः संसदि ॥५३॥ [शार्दूल०]

भातोऽर्हत्प्रतिमाभिः प्रत्येकं यस्य देवकुलिकाभिः ।

अभ्रंलिहशिखराग्रौ वृतौ विहारौ चतुर्मुखौ शश्वत् ॥५४॥ गीतिः

द्विरदारूढौ दानं, ददतौ कस्य न मुदे विहारकृतोः ।

जनकः सहस्रकिरणो वाछनामा पितामहश्चोभौ ॥५५॥ गीतिः

विन्ध्यो लक्ष्म्याऽतिवन्धोऽनिमिषगिरिरसौ नो गुरुर्न त्रिकूटः,

प्रोच्चैः कूटस्तुषाराचल उपल इव भ्रस्यदाभः सुनाभः ।

कैलासोऽसद्विलासो भवति नयनसत्प्रीतिदेऽस्मिन् विहारे,

मध्याह्नेऽशोस्तुरङ्गा यमिव सपदि नो द्रष्टुकामा व्रजन्ति ? ॥५६॥

[स्वधरा]

कुर्वाणोऽसुमतां सदाऽनिमिषतां द्रष्टुं समागच्छता(तां),

तन्वानोऽमृतसङ्गमाद्भुतसुखानाराधकानङ्गिनः ।

शङ्के निर्जरयानतो दलगणं सङ्गृह्य यन्निर्मितः,

प्रासादः प्रसरत्प्रभः समभवत् तदाग् [तद् द्राग्]विमानं ततः ॥५७॥

[शार्दूल०]

किञ्च- प्रासादनिर्माणजातभाग्य-प्रकर्षसम्भूतसमृद्धिभाजः ।

श्रीशान्तिदासस्य महप्रधाना वर्तन्त एते दिवसास्समन्तात् ॥५८॥

[इन्द्रवज्रा]

तथा हि- अप्युत्काऽखिलदोषलेशरहितं प्राणातिपाताङ्कितं,
स्वीकृत्याऽभयदं कलङ्कयदिदं मिथ्यात्वमुत्सर्पि तत् ।
विश्वेऽसौ तृणवद्धि(द्वि)वेच्य कृतिनां धुर्यो मुदा वर्द्धया-
ञ्चक्रेऽह्वाय कुमारपालनृपवत् सद्धर्मसस्यं स्फुरत् ॥५९॥ [शार्दूल०]

यः प्रत्यतिष्ठिपदलं शतशोऽथ बिम्बैः,
श्रेयांसबिम्बमसमं सममुन्नताङ्गैः ।
श्रीमन्महैः करकरिक्षितिभृन्मितेऽब्दे (१६८२),
श्रीमुक्तिसागरसदाह्वयवाचकेन्द्रैः ॥६०॥ [वसन्त०]

लोकैर्योऽकामि पूर्वं चिदमलगणकैश्चोपदिष्टः प्रसिद्धं,
साम्राज्यायाऽभिलाषं वचनमथ मुदा सत्यतां नेतुमेषाम् ।
बिभ्रद्राज्यं स वर्षे युगवसुरसभू (१६८४) सम्मिते शाहजिहानः,
कर्यश्चादिप्रसादं प्रणयति सततं शान्तिदासस्य यस्य ॥६१॥ [स्रग्धरा]

अस्य कपूरानाम्ना, प्रासूत च रत्नजीति सुतरत्नम् ।
अपरा पत्नी रसवसुनृपति (१६८६) मितेऽब्दे यसा परमम् ॥६२॥ [आर्या]

श्रीमुक्तिसागराख्यान्, वाचकमुख्यान् रसेभनृप(१६८६)सङ्ख्ये ।
अब्दे गणाधिपपदे, महामहैः स्थापयामास ॥६३॥ [आर्या]

अस्याऽऽज्ञयाऽतिचतुरो, दानी ज्ञानी च वस्तुपालाख्यः ।
श्रीराजसागरा इति, विदिताऽभिधयात्मजो भ्रातुः ॥६४॥ [आर्या]

ससाशीति(८७)मिताब्दसम्भवबलप्रोज्जम्भमाणप्रथं,
नानादेशदरिद्रदीनजनतान्नादिप्रदानायुधैः ।
सत्रागाररणाङ्गणे निहतवान् दुर्भिक्षविश्वद्विषं,
श्रीमद्गुर्जरमण्डनं स जयति श्रीशान्तिदासो भटः ॥६५॥ [शार्दूल०]

व्योमाङ्कभूप(१६९०)मितविक्रमवत्सरेऽलं,
यात्रां विधाय सुकृती विमलाचलस्य ।
योऽदीदिपत् पुनरपि द्रविणव्ययेन,
सत्कृत्य सङ्घमुरुसङ्घपतेर्ललाम ॥६६॥ [वसन्त०]

पादविहारप्रमुखै रामाङ्करसक्षिति(१६९३)प्रमितवर्षे ।

विधिभिरकार्षीद् विधिवित्, सङ्घयुतः सिद्धगिरियात्राम् ॥६७॥ [आर्या]

विशिखाङ्कनृप(१६९५)मितेऽब्दे, पुत्रं कर्पूरचन्द्रनामानम् ।

अस्य तृतीया पत्नी, फूला नाम्ना प्रसूतवती ॥६८॥ [आर्या]

अश्वङ्कनृप(१६९७)मितेऽब्दे, वाछीनाम्ना सधर्मिणी तुर्या ।

अस्य निधानं भूरिव, लक्ष्मीचन्द्राभिधं सुषुवे ॥६९॥ [आर्या]

आश्लिष्टवद्भ्यामन्योन्यं, धर्मं पोपोष्टि यस्सदा ।

द्रव्यभावस्तवाभ्यां स, शान्तिदासो जयत्वयम् ॥७०॥ [अनुष्टुप्]

किञ्च-श्रीवीरशासनसरित्पतिपार्वणेन्दु-

र्व्यस्मेरयत्कुवलयं गणभृत्सुधर्मा ।

जम्बूप्रभुस्तदनु भानुरिवाऽऽबभासे,

व्याकोशयन् भविकुशेशयकाननानि, ॥७१॥ [वसन्त०]

तत्पट्टपुष्करविभासनभानुभासः(साः),

सूरीश्वरा भुवि बभूवुरुदारवृत्ताः ।

यैर्लोभिरे गुणगणैः किल कोटिकाद्या,

गच्छस्य चन्द्रविशदस्य चिराय सञ्जा ॥७२॥ [वसन्त०]

क्रमाज्जगच्चन्द्रगुरुत्तमा बभु-

र्बृहद्गणाकाशसहस्ररश्मयः ।

येऽब्दे तपोभिः खगजांशु(१२८५)सम्मिते,

तपा इतीयुर्बिरुदं सुदुःक(ष्करैः) ॥७३॥ [उपजाति]

जातेषु बहुषु सूरिषु, बभूवुरानन्दविमलसूरीन्द्राः ।

चक्रे यैः करकरितिथि (१५८२)-मितवर्षे सत्क्रियोद्धारः ॥७४॥ [आर्या]

तेषां पट्टे रेजुः श्रीमन्तो विज[य]दानसूरीशाः ।

प्रतिवज्रमुनेर्भूयो विद्युतिरे ज्ञानलक्ष्म्या ये ॥७५॥ [आर्या]

तेषां पट्टप्राग्विगिरि-रवयः श्रीहीरविजयसूरिवराः ।

येषां गुणान् निरीक्ष्य श्रद(द्)धुर्गौतमगुणांस्तथ्यान् ॥७६॥ [आर्या]

तेऽकब्बरक्षितिपतिं प्रतिबोध्य जीवा-

ऽमारिप्रवर्तनमजस्रमचीकरन् द्राक् ।

सिद्धाद्रिरैवतकभूध्रकरोरुमुक्तिं,

भूस्पृक्सुखाय जिजिआकरमोचनं च ॥७७॥ [वसन्त]

तेषां पट्टसरोजा-दित्याः श्रीविजयसेनसूरीन्द्राः ।

षट्कर्त्री लक्ष्मीरिव, चिक्रीड यदाननसरोजे ॥७८॥ [आर्या]

परमां रेखां प्राप्ता, यथार्थवादिषु सदा बभुर्गुरवः ।

ये जित्वा नृपसदसि, प्रवादिनः सार्ववाचमदिदीपन् ॥७९॥ [आर्या]

तेषां पट्टे सम्प्रति राजन्ते राजसागराचार्याः ।

ये सर्वेषां सुविहित-साधूनां दधति स्नाम्राज्यम् ॥८०॥ [आर्या]

स्फुरच्चक्रप्रख्यं हरय इव सर्वज्ञशतकं,

करे कृत्वाऽजय्यं विबुधगणसेव्यं प्रणयतः ।

अनादृत्याऽभाग्यात् स्थितमिह हि मिथ्यात्वमहितं,

ममन्थुर्ये तेऽमी सकलसुखदाः सन्तु भुवने ॥८१॥ [शिखरिणी]

श्रीराजसागराभिध-सूरीशानां सदा विजयिराज्ये ।

श्रीशान्तिदास-सङ्घ-प्रभुः श्रिया वर्द्धतां सुकृती ॥८२॥ [आर्या]

किञ्च - अङ्गान्युल्बणवेपथूनि सहसा भ्राम्यन्ति नेत्राणि य-

न्नामाकर्णनजाद्भयात् प्रतिकलं मुह्यन्ति चेतांसि च ।

जायन्ते द्विषतां स गूर्जरधराधीशत्वमुज्जृम्भयन्,

भूमानाजमखान एष जयतात्र्यायैकनिष्ठो भुवि ॥८३॥ [शार्दूल]

किञ्च-चक्रे विहारं वसुधैकसारं, स वीरपालाभिधवर्द्धकीशः ।

यत्शिल्पमाकर्ण्य सुपर्वतक्षा, वसुन्धरामेति न लज्जयेव ॥८४॥

[उपजाति]

किञ्च-श्रीसौभाग्याभिधानामकृत कृतधियां सद्दिहारप्रशस्तिं,

शिष्यो वर्षेऽद्रिनन्दक्षितिप(१६९७)परिमिते सत्यसौभाग्य एताम् ।

येषां मन्दोऽपि लब्ध्वा जयति समदहद्वादिवृन्दान् प्रसादं,

ध्वस्ताऽशेषद्युसद्यक्षितिरुहसुमनोरत्नजाग्रत्प्रभावम् ॥८५॥ [स्त्रग्धरा]

जम्बूद्वीपसरोरुहे सुरगिरिः सत्कर्णिकाभां दधद्,

हंसादीन् भ्रमयत्यभीक्षणमभितो यावत् श्रिया लोभयन् ।

तावत् शिष्टजनैः प्रसन्नहृदयैर्वावाच्यमाना क्रियात्,

श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथभुवनोद्भूता प्रशस्तिः शुभम् ॥८६॥ [शार्दूल०]

॥ इति श्रीवृद्धशाखीय उकेशज्ञातीय सा० (श्रावक) श्रीवर्द्धमान सा०
(श्रावक) श्रीशान्तिदासकारित..... ॥

सम्पर्क :

C/o. हार्दिक ड्रेसिस

५५/चकला स्ट्रीट

रूम नं. १०, बीजे माळे,

मुम्बई-३

श्रीश्रीवल्लभोपाध्यायप्रणीतम् चतुर्दशवक्त्रस्थापनवादस्थलम्

म. विनयसागर

व्याकरण और न्यायशास्त्र आदि ग्रन्थों के कुछ कठिन विषयो पर शास्त्र चर्चा/शास्त्रार्थ/विचार-विमर्श करना यह विद्वानों का दैनिक व्यवसाय रहा है। किसी भी विषय को लेकर अपने पक्ष को स्थापित करना और प्रतिपक्ष का खण्डन करना यह कर्तव्य सामान्य सा रहा है। इसी प्रकार व्याकरण में स्वर १४ हैं, अधिक हैं या कम ?, इसके सम्बन्ध में श्रीश्रीवल्लभोपाध्याय ने चर्चा की और सारस्वत व्याकरण और अन्य ग्रन्थों के आधार पर १४ स्वर ही स्थापित किए।

कवि-परिचय

अनुसन्धान अंक २६, दिसम्बर २००३ में श्रीवल्लभोपाध्याय रचित मातृका श्लोकमाला के प्रारम्भ में उनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इनका और इनकी कृतियों का विशेष परिचय जानने के लिए अरजिनस्तवः और हैमनाममालाशिलोच्छ में मेरी लिखित भूमिका देखनी चाहिए।

जन्म-भूमि

इस सम्बन्ध में काफी विचार विमर्श किया जा चुका है। श्रीवल्लभ राजस्थान के ही थे, यह भी प्रामाणित किया जा चुका है। व्याकरण जैसे शुष्क विषय पर अ.आ.का अन्तर बतलाते हुए सहजभाव से यह लिखना "आईडा बि भाईडा, वडइ भाई कानड" यह सूचित करता है कि वे जिस किसी शाला/पाठशाला में पढ़े हों, वहाँ इस प्रकार का अध्ययन होता था, जो कि विशुद्ध रूप से राजस्थानी का ही सूचक है। अर्थात् श्रीवल्लभ (बाल्यावस्था का नाम ज्ञात नहीं) जन्म से ही राजस्थानी थे इसमें संदेह नहीं।

अनुसन्धान अंक २८ में श्रीपार्श्वनाथस्तोत्रद्वयम् भी प्रकाशित हुए हैं। जिनका कि इनकी कृतियों में उल्लेख नहीं था।

विषय-वस्तु

प्रारम्भ में ही स्वर १४ ही हैं इसकी स्थापना करने के लिए प्रतिवादी से ५ पाँच प्रश्न पूछे हैं :-

१. स्वर क्या है अथवा वह शब्द का पर्याय है ? २. पर्याय है तो वह नासिका से उत्पन्न पर्याय है ? ३. अथवा स्वरशास्त्र में प्रतिपादित निषादादिका अवबोधक है ? ४. क्या उदात्तादि का ज्ञापक है ? ५. अथवा विवक्षित कार्यावबोधक अकारादि संज्ञा का प्रतिपादक है ? इन पाँच विकल्पों को उद्भूत करके इनका समाधान भी दिया गया है :-

१. विविध जाति के देवता, मनुष्य, तिर्यञ्च और पक्षी आदि की विविध भाषाएं सुस्वर, दुस्वर आदि अनेक शब्द पर्याय होते हैं अतः यह स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

२. नासिका-उद्भूत पर्याय भी स्वीकार नहीं किए जा सकते, क्योंकि यह त्रिइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवों में भी सम्भव होती है । मनुष्यों में शोभन और अशोभन होती है । चन्द्र, सूर्य, स्वरोदय शास्त्र आदि से नासिक स्वर भी अनेक प्रकार के होते हैं, अतः यह भी सम्भव नहीं है ।

३. संगीत शास्त्र में निषाद आदि ७ स्वर माने गये हैं अतः यह उसके अन्तर्गत भी नहीं आता ।

४. उदात्त-अनुदात्त-प्लुत की दृष्टि से भी यह सम्भव नहीं है ।

५. विवक्षित कार्यावबोधक संज्ञा प्रतिपादक भी नहीं है । इसको सिद्ध करने के लिए नरपतिदिनचर्या ने १६ स्वर स्वीकार किए हैं, किन्तु अनुभूतिस्वरूपाचार्य ने सारस्वत व्याकरण में 'अइउऋलृसमानाः' 'उभये स्वराः' 'ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णा' 'ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि' का प्रतिपादन करते हुए १४ ही स्वर स्थापित किए हैं, वे हैं :- अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ए ऐ ओ औ, इन स्वरों को स्थापित करने के लिए और सारस्वत व्याकरण को महत्ता देते हुए पाणिनि व्याकरण, कालापक व्याकरण, सिद्धहेम व्याकरण, काव्यकल्पलता, अनेकार्थसंग्रह, विश्वप्रकाश, वर्णनिघण्टु, पाणिनि शिक्षा आदि के प्रमाण दिए हैं । लृ की दीर्घता को सिद्ध करते हुए पाणिनि

व्याकरण का आश्रय लिया है और रामचन्द्र और वासुदेव आदि के मत को अस्वीकार किया है। अर्थात् श्रीवल्लभोपाध्याय स्वर १६ या २१ नहीं मानते हैं अपितु १४ ही मानकर उसकी स्थापना भी करते हैं।

रचना-काल

प्रस्तुत लघु कृति का नाम चतुर्दशस्वरस्थापनवादस्थल है। अन्तिम प्रशस्ति में लिखा है :- खरतरगच्छ में श्री जिनराजसूरि के विजयराज्य में उपाध्याय ज्ञानविमल के शिष्य श्रीवल्लभोपाध्याय ने इस वाद की रचना की है। श्रीजिनराजसूरिजी संवत् १६७४ में गच्छनायक बने थे, अतः यह रचना भी संवत् १६७४ के बाद की है।

॥ ऐं नमः ॥

श्रीसिद्धी भवतान्तरां भगवतीभास्वत्प्रसादोदयाद्,
वाचां चञ्चुरचातुरी स्फुरतु च प्रज्ञावदाश्चर्यदा ।
नव्यग्रन्थसमर्थनोद्यतमर्तिप्रत्यक्षवाचस्पते-
र्विद्वत्पुंस इहाशु शस्यमनसस्तच्छ्रेतुकामस्य च ॥१॥

सन्ति स्वराः के कति च प्रतीताः, सारस्वतव्याकरणोक्तयुक्त्या ।
समस्तशास्त्रार्थविचारवेत्ता, कश्चिद् विपश्चिद् परिपृच्छतीति ॥२॥

पुरातनव्याकरणाद्यनेकग्रन्थानुसारेण सदादरेण ।
तदुत्तरं स्पष्टतया करोति, श्रीवल्लभः पाठक उत्सवाय ॥३॥

इह केचिद् अहङ्कारशिखरिशिखां समारूढाः सारासारविचारकरण-
चातुरीव्यामूढाः कूर्चालसरस्वतीति बिरुदमात्मनः पाठयन्तः स्वगल्लङ्गल्लरी-ज्ञात्कारेण
अविद्यानटीं नाटयन्तः सकलशाब्दिकचक्रचक्रवर्तित्चूडामणिमात्मानं मन्यमानाः
स्वराणां चतुर्दशसंख्यासत्तां विप्रतिपद्यमाना अतुच्छमात्सर्याद्यनणुगुणमत्कुणतल्प-
कल्पाः संकल्पितानल्पविकल्पाः प्रजल्पन्ति जल्पाकाः स्वराः कियन्त ? इति
वदन्तो वादिनः सानन्दं सादरं प्रष्टव्या भवन्ति विशिष्टमतिभिः प्रतिवादिभिः —

१. मर्ति कै २. तद्यथा पाठोऽधिकः कै

१. कोऽयं स्वरो नाम ? किं शब्दपर्यायः ?
२. उत नासिकासमुद्भूतपर्यायः ?
३. अथवा निषादादीनामवबोधकः ?
४. किमुत उदात्तादीनां ज्ञापकः ?
५. अहोस्वित्^१ विवक्षितकार्यावबोधकाऽकारादिसंज्ञाप्रतिपादकः ?

इति विकल्पपञ्चतयी विषयपञ्चतयी च जनमनांसि क्षोभयतीति प्रतिभाति ।

१. यदि आद्यस्तर्हि विविधजातीनां सुरनरतिर्यग्विहगादीनां विविधभाषा-भाषकत्वात् सुस्वरदुःस्वरोच्चैर्नीचैरादिभेदभिन्नोऽप्यनेकधा शब्दपर्यायः स्वरो-ऽवधार्यः^२ । इत्याद्यः ॥१॥

२. अथ द्वितीयस्तर्हि सोऽपि त्रीन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजीवानामेव तत्सद्भावाद् द्विविधोऽपि । पुनः शोभनाऽशोभनभेदाभ्यां द्विविधो मनुष्याणामेव । चन्द्र १-सूर्यो २- च्व ३- नीच ४- तिर्यगादि ५- लक्षणैरनेकधा स्वरोदयशास्त्रात् नासिकास्वरोऽवगन्तव्यः । इति द्वितीयः ॥२॥

३. अथ चेत् तृतीयस्तर्हि सोऽपि निषाद १-ऋषभ २-गान्धार ३- षड्ज ४- मध्यम ५- धैवत ६- पञ्चम ७ इति लक्षणैः तन्त्रीकण्ठोद्भवैः सप्तविधः । यदमरः-

निषादर्षभगान्धार-षड्जमध्यमधैवताः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः । [१.७.१]

इति सप्तविधोऽवसेयः^३ । इति तृतीयः ।

४. अथ चतुर्थश्चेत्तर्हि उदात्तानुदात्तस्वरितानां त्रैविध्यात् त्रिविधः ।

यदमरः-

उदात्ताद्यास्त्रयः स्वराः [१.६.४]

इति, अकारादीनामेव^४ एते । इति चतुर्थः ॥४॥

- | | |
|---------------------------|------------------------------------|
| १. आहोस्वित् कै. | २. स्वरोऽवधार्यः नास्ति जे प्रतौ । |
| ३. पाठो नास्ति जे प्रतौ । | ४. एव नास्ति कै. |

५. अथ पञ्चमो विवक्षितकार्यावबोधकाऽकारादिसंज्ञाप्रतिपादकश्चेत् तर्हि सोऽपि द्विधा, ज्योतिःशास्त्रे व्याकरणे च द्विधा दर्शनात् ।

तत्र ज्योतिःशास्त्रानुसारेण षोडशप्रकारः, यदवदत् नरपतिदिनचर्यायां नरपतिदिनचर्याकारः-

मातृकायां पुरा प्रोक्ताः स्वराः षोडशसंख्यया ।

इति । तथापि तन्मते कार्यकाले अ इ उ ए ओ पञ्चैवैते कार्यकारिणे ज्ञेयाः यत् नरपतिदिनचर्याकारः-

मातृकायां पुरा प्रोक्ताः स्वराः षोडशसंख्यया ।

तेषां द्वावन्तिमौ त्याज्यौ चत्वारश्च नपुंसकाः ॥

शेषा दश स्वरास्तेषु स्यादेकैकं द्विकं द्विकम् ।

ज्ञेया अतः स्वराद्यास्ते स्वराः पञ्च स्वरोदये ॥ []

इति । ऋ ऋ लृ लृ एतान् चतुःसंख्यान् नपुंसकान्, द्वौ अन्तिमौ अं अः इत्येतौ च त्यक्त्वा, अ इ उ ए ओ एते पञ्च कार्यकारिणः स्वराः स्वरोदये ज्ञेयाः । इति ज्योतिःशास्त्रे षोडशप्रकारो अकारादिसंज्ञाप्रतिपादकः स्वरशब्दोऽवगन्तव्यः ।

अथ भो ! भो ! व्याकरणाद्यनेक-ग्रन्थानुसारेण स्वराः कियन्त इति प्रतिपादयन्ति भवन्तः तत्रभवन्तः,^१ तर्हि तत्रैवं ब्रूमः-

अहो व्याकरणाद्यनेकग्रन्थानुसाराणां^२ चतुर्दशसंख्यत्वदर्शनात् चतुर्दश स्वराः ।

अत्र वादी वदति - नैवम्, अ इ उ ऋ लृ समानाः [संज्ञाप्र० १.]

इत्यनेन सूत्रेण अकारादीनां पञ्चानामेव समानसंज्ञाविधानात् । तदनन्तरं

ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि [संज्ञाप्र० ३.]

^३इत्यनेन सूत्रेण एकारादीनां चतुर्णां सन्ध्यक्षरसंज्ञाविधानात् । तत उभये स्वराः [संज्ञाप्र० ४] इत्यनेन सूत्रेण अकारादीनां पञ्चानां चतुर्णां च एकारादीनां

१. तत्रभवन्तः नास्ति ज जे. प्रतौ

२. व्याकरणेषु अकारादीनां स्वराणां कै. प्रतौ ।

३. कै. प्रतौ एकारादीनां चतुर्णां सन्ध्यक्षरसंज्ञाविधानात्. तत उभये स्वराः इत्यनेन सूत्रेण ।

स्वरसंज्ञाविधानात् नवैव स्वराः, न चतुर्दश स्वराः इति श्रीमदनुभूतिस्वरूपा-
चार्यवचनात् ।

अत्र प्रतिवादी वादिनं प्रति वदति-

कथं भो विद्वन् ! 'उभये स्वराः' [संज्ञाप्र० ४.] इति पञ्चवर्णात्मके
सूत्रे एतद्वृत्तौ च 'अकारादयः पञ्च, चत्वार एकारादय उभये स्वरा
उच्यन्ते ।' इति त्रयोविंशतिवर्णात्मिकायां साक्षात् नवेति पदस्य अप्रतिपादनात्
कथं नव स्वरा इति नियमः कर्तुं शक्यते ?

अत्र वादी वदति-

'अकारादयः पञ्च चत्वार एकारादय'^१ इति वृत्तौ नियमस्यैव करणात्
नवेति पदस्य ग्रहणे प्रयोजनाभावात् ।

अत्र ^२प्रतिवादी प्रतिवदति-

नैवम्, नव स्वरा, इत्यङ्गीकरणे दधि आनय, गौरी अत्र, वधू आसनम्
इत्यादिषु प्रयोगेषु 'इयं स्वरे' [स्वरसन्धि १] 'उ वम्' [स्वरसन्धि ५]
इत्यादिषु सूत्रेषु स्वरे इति पदेन नवानामेव स्वरेण अग्रहणात् (स्वराणां
ग्रहणाद्), दीर्घानामग्रहणात् 'इयं स्वरे' 'उ वम्' इत्यादीनां प्राप्तेरभावात्,
दध्यानय इत्यादीनामुदाहरणानां सिद्धिर्न स्यात् ।

अथ चेत्, 'ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णाः' [संज्ञाप्र० २.] इत्यनेन
सूत्रेण दीर्घग्रहणात् सिद्धिर्भविष्यति । एवं चेत्, तर्हि स्वरसंज्ञाव्याघातात् 'इयं
स्वरे दीर्घे च' इतीदृशं सूत्रं स्यात्, न तथा । अतः स्वराः चतुर्दशैव
सर्वव्याकरणादिशास्त्र-सम्मतत्वात् सर्वशिष्टप्रमाणत्वाच्च ।

ननु सरस्वतीविहितसूत्रस्य अनुभूतिस्वरूपाचार्यविहितव्याख्यानस्य च
अल्पाक्षरैः समस्तपुराणव्याकरणसम्मताऽनल्पार्थसूचनात् अइउऋलृसमानाः
[संज्ञाप्र० १] इति सूत्रेण समाना इत्यस्य अयमर्थः- समानं तुल्यं मानं परिमाणं
येषां ये समानाः ।^३

१. पञ्च चत्वार एकारादयः नास्ति कै. प्रतौ ।

२. 'प्रति' नास्ति कै. ।

३. कै.प्रतौ- ननु अकारादयः पञ्चवर्णा असदृशं विलक्षणमाकारं विभ्राणाः कथं
समानपरिमाणाः येन समानं परिमाणं येषां ते समानपरिमाणा इत्यर्थः कथ्यते ?

सत्यम्, उदात्तानुदात्तस्वरितभेदात् त्रयस्तावद् अकाराः । पुनस्ते सानुनासिक-निरनुनासिकभेदात् द्विविधा-केचिदकाराः उदात्तानुदात्तस्वरिताः सानुनासिकाः, केचिदकाराः उदात्तानुदात्तस्वरिताः निरनुनासिकाः । इति अकारः षोढा भिद्यते । एवं दीर्घप्लुतयोरपि प्रत्येकं भेदकथनात् अष्टादशधा भिद्यते अवर्णः । एवम् इवर्णादयोऽपि । इत्थं समानपरिमाणत्वयुक्तत्वात् समानसंज्ञा अन्वर्था अकारादीनामित्यर्थः ।

ननु एवं सति अकारादीनां पञ्चानामेव समानसंज्ञासद्भावे गङ्गानामित्यादी दीर्घाकारादीनां समानकार्यं न स्यात् इत्याशङ्कं निराकर्तुं अनुक्तामपि समानातिसंख्यां पुराणव्याकरणानुसारिणीं प्रमाणयितुं ह्रस्वदीर्घप्लुतैः स्थानप्रयत्नादिभिश्च सवर्णसंज्ञां ज्ञापयितुं च 'ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णाः' [संज्ञाप्र० २.] इति परिभाषासूत्रं व्यरचयद् आचार्यः, अनियमे नियमकारिणी परिभाषेति परिभाषालक्षणात् पूर्वसूत्रेण समानसंज्ञाया अनिश्चयीकरणात् 'ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णाः' [संज्ञाप्र० २.] इति परिभाषासूत्रेण ह्रस्वदीर्घयोः सावर्ण्यात् सरस्वतीकृते सूत्रे ह्रस्वोक्त्या दीर्घसंग्रह इति तद्भादपि दीर्घग्रहणात् 'दश समानाः' [कातन्त्र. १।१।३] इति समानसंज्ञां निरणयत् ।

अपरञ्च स्थानप्रयत्नाभ्यामपि सवर्णाः []

इति सवर्णसंज्ञां प्रज्ञापयत् श्रीमदनुभूतिस्वरूपाचार्यः ।

ननु प्लुतभेदयोस्तु समानसंज्ञां प्लुतभेदयोस्तु^१ सवर्णसंज्ञामेव इति ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदा इत्यत्र भेदशब्दग्रहणात् स्थानप्रयत्नयोर्ग्रहणात् स्थानप्रयत्नाभ्यां अकारादीनां व्यञ्जनानां च सवर्णसंज्ञादर्शनात्, तथा च पाणिनिः - 'तुल्यास्य-प्रयत्नं सवर्णम्' [पाणिनि १.१.९] इति तथा च कालापकव्याकरणम् - 'दश समानाः' [कातन्त्र० १।१।३] तस्मिन् वर्णसमाम्नायविषये आदौ ये दशवर्णास्ते समानसंज्ञा भवति । 'तेषां द्वौ द्वावन्वोन्यस्य सवर्णौ' [कातन्त्र. १।१।४] । तेषामेव दशानां समानानां मध्ये यौ द्वौ द्वौ वर्णौ तौ अन्योन्यस्य परस्परं सवर्णसंज्ञौ^२ भवतः । सवर्णा ९ - अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ तेषां ग्रहणं व्यक्त्यर्थं^३, तेन ह्रस्वयोर्द्वयोः दीर्घयोश्च द्वयोः सवर्णसंज्ञा सिद्धेतीति ।

१. समानसंज्ञा प्लुतभेदयोस्तु नास्ति ज प्रतौ । २. अन्योन्यसंज्ञौ इति कै.
३. व्यक्त्यर्थः प्रयोजनमस्य करणस्य तत् कै. ।

तच्चैवम्-

ह्रस्वदीर्घः अ आ १, दीर्घह्रस्वः आ अ २, ह्रस्वह्रस्वः अ अ ३,
दीर्घदीर्घः आ आ ४. इति चतुर्भङ्गी । तदुक्तम्-

क्रमोत्क्रमस्वरूपेण सवर्णत्वं निवेदितम् ।

इष्टादपि सवर्णत्वं भणितं ऋलृकारयोः ॥१॥ []

इति । तथा च हैमव्याकरणम्-लृदन्ताः समानाः [सिद्धहेम. १.१.७]

इति । तथा च नरपतिः-

मातृकायां पुरा प्रोक्ताः स्वराः षोडशसंख्यया ।

तेषां द्वावन्तिमौ त्याज्यौ चत्वारश्च नपुंसकाः ॥

शेषा दश स्वरास्तेषु स्यादेकैकं द्विकं द्विकम् ।

[]

इति । एवं अकारादीनां प्रत्येकं युग्मयुग्मत्वेन सवर्णत्वात्-समानसंज्ञा सिद्धा ।
प्लुतस्य च सवर्णसंज्ञासद्भावेपि सन्ध्यादिकार्येषु सन्धिकार्यानिर्हत्वात् न समानसंज्ञेति ।

ननु लोकेऽपि अ-इ-उ-ऋ-लृ इति ह्रस्वपञ्चाक्षराणां पञ्चदीर्घाक्षरैः
सह रेखाद्याकृतिविशेषे सत्यपि 'एकदेशविकृतं अनन्यवद्भवति' इति न्यायादभेदात्
'वर्णग्रहणे जातिग्रहणम्' इति न्यायेनाऽपि च एकवर्णग्रहणे तज्जातीयस्य
अनेकस्यापि ग्रहणात् समानसंज्ञाप्रतिज्ञा युक्ता । यतः- प्रथमं मातृकापाठं
पाठयतां(पठतां) बालानामपि^१ "आईडा बि भाईडा, वडइ भाई कानउ"
इत्यादि उच्चारणकालात्^२ अग्रे उपरि अधश्च कानकादिरेखाविशेषाणां लेखनात्,
ज्योतिःशास्त्रेऽपि नामादिमाक्षरोच्चारे ह्रस्वदीर्घयोरेकराशिगणनाच्च । व्याकरणेनाऽपि
मातृकाक्षराणामेव निर्णयकरणात् 'व्याक्रियन्ते स्वरव्यञ्जनानि स्वरव्यञ्जन-
संयोगाऽसंयोगाभ्यां^३ आकारविशेषी क्रियन्ते अनेनेति व्याकरणम्' इति व्युत्पत्तेः ।
इति सारस्वत-व्याकरणे 'दश समाना' इति संज्ञा सिद्धा ।

'उभये स्वराः' [संज्ञाप्र० ४.] इत्यास्ययमर्थः- उभौ अवयवौ ह्रस्वदीर्घौ
कार्यकाले येषां ते उभये, उभशब्दादपि सर्वादित्वाज्जसीत्वम् ।

१. बालकानामपि इति कै. । २. कारणात् कै. ।

३. संयोगा नास्ति कै. ।

ननु ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदानां स्वसंज्ञासद्भावेऽपि उभये इति पदस्य कस्य कस्यचिद् विशेषार्थस्य प्रतिपादकत्वात् उभये इति पदं प्रयुक्तवानाचार्यः । एवं नो चेत्, उभये इति पदस्य समुदायद्वयपरामर्शकत्वात् 'ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णाः' [संज्ञाप्र० २.] इति सवर्णसंज्ञकाः । 'ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि' [संज्ञाप्र० ३.] इति सन्ध्यक्षरसंज्ञाश्च उभये स्वरसंज्ञा भवन्तीति व्याख्या स्यात् । न चैवम् ।

सत्यम्, अकारादयः पञ्च चत्वार एकारादय 'उभये स्वराः' [संज्ञाप्र० ४] इति व्याकुर्वत आचार्यस्याभिप्रायेण अयमर्थः । स चाऽयं ह्रस्वदीर्घेति सूत्रस्य समानदशकत्वस्थापकत्वेन साक्षिकस्य इव 'अइउऋलृ समानाः' [संज्ञाप्र० १.] 'ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि' [संज्ञाप्र० ३.] इति सूत्रद्वयस्य विचाले स्थितत्वात् अकारादयः पञ्च, उभये ह्रस्वदीर्घाः, चत्वार एकारादयः स्वरा उच्यन्ते इति अयमर्थः समर्थः ।

यद्वा, उभये इति पदं अत्र तन्त्रेण भण्यते । तन्त्रं नाम सकृदनुष्ठितस्य उभयार्थसाधकत्वम् । यथा उभयोः प्रधानयोर्मध्ये व्यवस्थापितः प्रदीपः सकृत्प्रयत्नकृतः उभयोपकारकः स्यात्, तथा उभये इति पदमपि सकृदुच्चरितं ह्रस्वदीर्घेति समुदायद्वयस्य अकारादिपञ्चक एकारादिचतुष्केति समुदायस्य च उपकारकम् ।

अथवा, उभये इति पदं आवृत्या आवर्तनीयम् । आवृत्तिर्नाम पुनः पाठः एकशेषे वा । स च यथा उभये उभये स्वराः इति वारद्वयं उभये इत्यस्य पाठे पठनीये । एकशः पाठे उभये स्वरा, इत्ययम्, पुनः पाठे उभये च उभये च उभये सरूपाणामेकशेष इत्येकशेषेऽपि उभये स्वराः इत्येकशेषः । एवं तन्त्रेण पुनः पाठेन एकशेषेण च उभये स्वराः इतीदृशं सूत्रं सूत्रयति स्म सरस्वती, तस्य अयमभिप्रायार्थः ।

प्रथमेन उभये इति पदेन चतुर्णां ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदानां स्वरसंज्ञासद्भावेऽपि सन्ध्यादिकार्यानुपयोगित्वात् प्लुतभेदान् परित्यज्य ह्रस्वदीर्घ इति समुदायद्वयम-प्रहीत् ।

द्वितीयेन उभये इति पदेन 'अइउऋलृसमानाः' [संज्ञाप्र० १.] इति सूत्रोक्ता अकारादयः पञ्च, ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि [संज्ञाप्र० ३.] इति

सूत्रोक्ताश्चत्वार एकारादय इति समुदायद्वयं अग्रहीत् । ततोऽयमर्थः-अकारादयः पञ्च, उभये ह्रस्वदीर्घाः, चत्वार एकारादयः उभये स्वरा उच्यन्ते इति । स्वयं राजन्ते शोभन्ते एकाकिनोऽपि अर्थं प्रतिपादयन्त इति स्वराः । उ प्रत्ययः पृषोदरादित्वात् स्वयं शब्दस्य स्वभावः । तथा च स्वरलक्षणं प्रोक्तं प्राग्भिः-

अ विष्णुः स्मृतिवाक्ये आ इ गताविति मूर्तिभिः ।

लिङ्गनिपातधातूनां विराजन्ते स्वयं स्वराः ॥ []

इति । तच्चैते अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ए ऐ ओ औ ।

ननु इह लृवर्णस्य स्वरसंज्ञायां किं प्रयोजनम् ? लृकारः 'कृपू सामर्थ्ये' इत्यस्मिन् धातो एव प्रयुज्यते । कृपेरो लः [भ्वादि. आत्मने. २०] कृपेर्धातोः रेफस्य लकारादेशो भवति । र इति रश्रुतिसामान्यमुपादीयते । तेन यः केवलो रेफो यश्च ऋकारस्थः तयोरपि ग्रहणम् । ल इत्यपि सामान्यमेव उपादीयते । ततोऽयं केवलस्य रेफस्य स्थाने लकारादेशो विधीयते । इत्यनेन ऋकारस्यापि एकदेशविकारद्वारेण लृकारकरणादेव प्रयोगो दृश्यते, न च तत्र स्वरसंज्ञायाः किमपि प्रयोजनं विद्यते । दीर्घस्य लृकारस्य तु सर्वथा प्रयोग एव नास्तीति ।

मैवम्, यदशक्ति यदसाधु तदनुकरणस्यापि साधुत्वमिष्यते । यथा- 'अहो ऋतक' इति प्रयोक्तव्ये शक्तिवैकल्यात् कश्चित् 'अहो लृतक' इति प्रयुक्तवान् । तदा तत्समीपवर्ती किमयं आह इति अपरेण केनाऽपि पृष्ठः सन् तमनुकुर्वन् 'अहो लृतक' इत्याह - इति कथयति ।

अथ च लृकारस्य स्वरसंज्ञया 'ओत् [पाणिनि. १.१.१५] इति प्रक्रियासूत्रेण, 'औ निपातः' [प्रकृतिभाव० ३.] इति सारस्वतसूत्रेण वा प्रकृत्या भवनात् क्लृप्त इत्यत्र अनचि च [पाणिनि. ८.४.४७] इति प्रक्रियासूत्रेण, ह्रसेऽर्हहसः [स्वरसंधिः २] इति सारस्वतसूत्रेण वा लृस्वरात् परस्य पकारस्य द्वित्वभावेनात् । 'क्लृ३सशिख' इत्यत्र दूराद् हूते चेति गुरोरनृतोऽनन्तस्याप्यै-कैकस्य प्राचाम् [प्राणिनि. ८.२.८६] इति पाणिनीयसूत्रेण स्वराश्रितस्य प्लुतस्य प्रतिपादनाच्च लृकारस्य स्वरसंज्ञायां प्रयोजनं विद्यते एव । शर्ववर्मणस्तु मते अकारादीनामिव लृवर्णस्यापि स्वरसंज्ञया मुख्यमेवं प्रयोजनं विद्यते । यथा-

अमू लृकारं पश्यतः, अमी लृकारं पश्यन्तीति उभयत्राऽत्र अदसोमात् [पाणिनि. १.१.१२] इति प्रक्रियासूत्रेण, नामी [सा. प्रकृतिभाव. १] इति सारस्वतसूत्रेण वा प्रकृत्या भवनात् लृकारस्य स्वरसंज्ञाप्रयोजनसद्भावः सिद्धः ।

‘लृवर्णो न दीर्घोऽस्ति’ इति यद् रामचन्द्रो अवोचत्, तदपि तदिच्छया तस्यैव ‘स्वतः प्रमाणं न परतः’ इति ।

तथा च कालापकव्याकरणसूत्रं,^१ तत्र, चतुर्दशादौ स्वराः [] तथा च एतद्वीका- तत्र तस्मिन् वर्णसामान्याविषये आदौ ये चतुर्दशवर्णास्ते स्वरसंज्ञा भवन्ति । स्वर १४ - अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ए ऐ ओ औ । यथा अनुकरणे ह्रस्वलृकारोऽस्ति तथा दीर्घोऽप्यस्तीति मतमिति ।

तथा च हैमव्याकरणसूत्रम्- ‘औदन्ताः स्वराः’ [सिद्धहैम. १.१.४] वृत्तिश्चास्य- ‘औकारावसाना वर्णाः स्वरसंज्ञा भवन्ति । तकार उच्चारणार्थः । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ ए ऐ ओ औ । औदन्ता इति बहुवचनं वर्णेष्वपि पठितानां दीर्घपाठोपलक्षितानां प्लुतानां संग्रहार्थं, तेन तेषामपि स्वरसंज्ञेति ।’

तथा च काव्यकल्पलतासूत्रम् - विकृति स्रोतस्विन्यः चतुर्दश तु^२ [] इति ।

तथा च हैमानेकार्थसूत्रम् - स्वरः शब्देऽपि षड्जादौ [अनेकार्थ कां. २ श्लो. ४७७] इति । ‘अच्’ इति अकारादीनां चतुर्दशानां वर्णानां पाणिनीयासंज्ञा । तत्र यथा - ‘एकस्वरं चित्रमुदाहरन्ति’ [] इति हैमानेकार्थटीका ।

तथा च विश्वप्रकाशकारः-

स्वरोऽकारादिमात्रासु मध्यमादिषु च ध्वनौ ।

उदात्तादिष्वपि प्रोक्तः, [विश्वप्र० रान्तवर्म ९] इति ।

हलायुधोऽपि-

१. ‘व्याकरण’ नास्ति कै. ।

२. काव्यकल्पलता.....रत्नपुरुषत्वे य स्वप्नाः जीवाजीवोपकरणगुणिनाग्रगारं रज्जुसूत्रं पूर्वमिहाकुले करिपिण्डप्रकृति इति पाठो विद्यते कै. प्रतौ ।

१अकारादावुदात्तादौ षड्जादौ निस्यने स्वरः ।

[] इति ।

तथा वर्णनिर्घण्टौ चामुण्डोऽपि-

अकारादीनां मातृकानुक्रमेण नामानि न्यबध्नात् । तद्यथा-

अकारोऽथ निगद्यते-

श्रीकण्ठः केशवस्त्वाद्यौ ह्रस्वो ब्राह्मणकः शिवः ।

आयुर्वेदः कलाढ्यश्च मृतेः प्रथमोऽपि च ।

एकमातृकवाणीशौ सारस्वत-ललाटकौ ।

मृत्युञ्जयः स्वराद्यश्च मातृकाद्यो लघुस्तथा ।

आ-

आकारोऽनन्तक्षीराब्धी गुरुर्नारायणो मुखम् ।

वृत्ताकारो दीर्घ, आपश्चतुर्मुखप्रकाशकौ ।

मुखवृत्तामृते वक्रो द्वितीयस्वरमोदकौ ।

[]

इति । अपि च-

व्यञ्जनानि त्रयस्त्रिंशत् स्वराश्चैव चतुर्दश ।

[] इति ।

इत्याद्यनेकशास्त्रानुसारेण चतुर्दशस्वराः सारस्वतव्याकरणेऽप्यवश्यं 'उभये स्वराः' [सा. संज्ञाप्रकरण. ४] इति सूत्रस्य पूर्वोक्तरीत्या व्याख्यानात् अवबोधव्यानि^१ विद्वद्वन्दारकैः ।

एकविंशतिरपि स्वराः यत् पाणिनीयशिक्षा-

१. अकारादिषु वर्णेषु षड्जादिषु सप्तषु उदात्तादिषु विज्ञेयः । प्रक्रियां स्वरे स्वरः इति । धञ्जयोऽपि इति पाठो विद्यते कै. प्रतौ ।

१. बोधव्या कै.

‘स्वरा विंशतिरेकश्च’ [पाणिनीयशिक्षा प. ४]

इति । तच्चैवम् - अ१, इ२, उ३ एते त्रयः ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदात् नव
९, ऋवर्णः प्लुतहीनो द्विविधः २, लृकारो दीर्घहीनो द्विविधः २, सन्ध्यक्षराणि^१
दीर्घप्लुतभेदात् ८, एवं एकविंशतिस्वराः सन्ति । परं व्याकरणे
सन्ध्यादिकार्योपयोगित्वेन चतुर्दशानामेव उपयोगात् चतुर्दशैव स्वराः ।

ये च सारस्वतटीकाकाराः वासुदेवादयः पञ्च समानाः नवस्वराः
अष्टौ नामिनः इति प्रतिपादयन्ति, तद् असत्, पूर्वकविप्रणीतव्याकरणाद्यनेकग्रन्थैः
सह विरोधात्, सरस्वतीकृतसमानादिसंज्ञानामपि च सर्वपूर्वकविप्रणीतानेक-
ग्रन्थसंज्ञानुयायित्वात् । छ ।

इति श्रीश्रीवल्लभोपाध्यायविरचितं चतुर्दशस्वरस्थापनवादस्थलं समाप्तम् ।

श्रीजिनराजसूरीन्द्रे धर्मराज्यं विधातरि ।

अस्मिन् खरतरे गच्छे धर्मराज्यं विधातरि ॥१॥

जगद्विख्यातसत्कीर्तिर्ज्ञानविमलपाठकः ।

योऽभवत्तस्य पादाब्जभ्रमरायितमानसः ॥२॥

श्रीवल्लभ उपाध्यायः समाख्यातीति सूनृतम्^२ ।

चतुर्दशस्वरा एते सर्वशास्त्रानुसारतः ॥३॥ त्रिभिर्विशेषकम्

इति श्रीश्रीवल्लभोपाध्यायविरचित-सारस्वतमतानुगत-

सर्वशास्त्रसम्मत-चतुर्दशस्वरस्थापनवादस्थल-

प्रशस्तिः समाप्ता । तत्समाप्तौ च समाप्तं चतुर्दश-

स्वरस्थापनवादस्थलम् ।

तच्च वाच्यमानं चिरं नन्दतात् ।

१. अष्टौ इत्यधिकपाठो कै. ।

२. समानऽपि इति जयपुर प्रतौ.

३. ज. प्रतौ सुनतं

प्रति परिचय

१. ज. उपाध्याय जयचन्द्रगणि संग्रह, रा.प्रा.वि.प्र. बीकानेर शाखा कार्यालय
२. खरतरगच्छ ज्ञान भण्डार, जयपुर, क्रमांक छ. १०६ पत्र ७, ले. १९वीं शती
३. कै. श्री कैलाशसागरसूरि ज्ञान मन्दिर, कोबा, अहमदाबाद नं. १६१७७ पत्र ५, ले. १८वीं शती

लेखन प्रशस्ति

तत्त्वविचक्षणैर्वाच्यमानं चिरं नन्दतात् । हीरस्तु । श्रीःछः ॥ श्री ॥

श्रीजिनराजसूरिभिः । तत्सिष्यश्रीमानविजयजी तत्सिष्यश्रीकमलहर्षजी
तस्य छात्रवद् विद्याविलासेन लिखतमस्ति ॥श्री॥

C/o. प्राकृत भारती
13/A, मेन मालवीयनगर,
जयपुर ३०२०१७

मुनि मेरु रचित तव गीतिकाओ

- उपा. भुवनचन्द्र

माण्डल-पार्श्वचन्द्रगच्छजैनसंघना ज्ञानभण्डारना एक प्रकीर्ण पत्रमांथी मळेला नव गीतो यथामति संकलित करीने विद्वानो समक्ष मूकी रह्यो छुं. कर्ताए पोते जणाव्युं छे : जिनभद्रसूरिनी पाटे श्रीजिनचन्द्रसूरिनां दर्शन कर्या. लिपिकारे जणाव्युं छे तेम मुनि मेरु कमलसंयम उपाध्यायना शिष्य हता.

गीतो भाववाही छे अने शास्त्रीय रागोमां निबद्ध छे. गीतोनी भाषा ध्यान खेंचे छे.

'संगतू', 'गमिले' जेवा शब्दो मराठीनुं स्मरण करावे छे. 'दुइ', 'करिवो' 'जाइवो' वगैरे शब्दो बंगाळीना सूचक छे. 'इम' 'इणि', 'एह' जेवा शब्दो मारुगूर्जर भाषाना छे. 'जिणह' जेवो अपभ्रंश प्रयोग पण आमां छे. 'वदति' एवो शुद्ध संस्कृत शब्द पण जोवा मळे छे. 'नेकु' (नेक) ए- ऊर्दू- अरेबिक शब्द पण अत्रे हाजर छे. रचयिता विविध देशोमां विचरनार एक मुनि छे माटे आम थयुं छे के आवी भाषा कोई प्रदेशमां बोलाती हती - ए विशे तज्ज्ञो ज प्रकाश पाडी शके.

'पहिरि दाखिणु चीरु' (गी. ४) - दक्षिणी चीर अर्थात् वखनो उल्लेख हशे ? जो एम होय तो मराठी साथे सीधो सम्बन्ध स्थापित थाय. गीत ८ मांनो शब्द 'मुनागरू' तपास मागे छे.

मुनि मेरु विशे माहिती प्राप्त थई नथी. कमलसंयम उपाध्यायनी रचनाओ नोंधाई छे.

बंगाळी के मराठीना प्राचीन रूपना नमूना समान आ रचनाओ भाषा रसिकोने रसप्रद जणाशे एवी आशा छे.

१

॥ गउड श्रीराग ॥

अंधकारु गमिले प्रगट प्रगासे, इणि कारणि दोषाकरु जले पतित पलासे ॥१॥
 भमरा रंगु कियले कमल निवासे सुकरम दिनकर किरणि नियतु वगासे ॥द्रू०॥
 सुगुरु वचन रसो निज मनि आणी, मुनि मेरु समरइ जिनु परमारथु जाणी
 ॥ २ भमरा० इति गीतं ॥

२

पूनिमरजनीकरु उपमा लावइ रमणी वदन कहं जनु रहसइ ।
 धिगु लाला मल कफ जल पूरित अधम उतिम मानइ मोहवसे ॥१॥
 भमियउ भमियउ जीवा एणि परे, चिन्तामणि बुधि काच गहिउ करे ॥द्रू०॥
 सिव पुरि चालतं मारगि वटपाडउ, मनसिज बाणिहि निधिण हणइ ।
 एम न विदति मानव हरखति, तरुणी नयनपेखि मूरख पणइ ॥भूमि० ॥२॥
 अधर अधरगति संगति दायकु, परम पदिहि जातु जीउ धरइ ।
 वटफल जिम एह बाहिरि मनोहरु, अंतरंगु विचारतु चितु न हरइ ॥भूमि० ॥३॥
 कुच्युग अमृतकलस जिम सोइह, इणि भ्रमि भूलउ म संसार सरे ।
 धरम वाहन पंथि ए दुइ परवत, पार चाहसि तउ यतन करे ॥भूमि० ॥४॥
 दुरगंध असुचि लजा ऊपजावइ, तउवि तरुणी अंग जीउ सरइ ।
 करम वाहितु न जपइ परमेसरु, सुरसरि छोडि पंकि न्हाणु करइ ॥भूमि०॥५॥
 त्रिभुवनपति जिनचरण प्रसादि, भ्रम भंजिवि परबोधु लहइ ।
 कमलसंजम उवझाय पद पंकज एकचितु मुनि मेरु एम कहइ ॥भूमि०॥६॥
 ॥ इति धनाश्रयिरागेणस्त्रीविरक्तिकारणगीतं ॥

३

॥ श्री राग ॥

सकल मंगल कारणू रे, आरे वीतराग मइ भेटिउ युगादि देउ ॥१॥
 भावइ रे भावइ जिणिदू रे, आरे आदिनाथ पदि मनु लागिनला ॥द्रू०॥

मुनि मेरु संगइ संगतूरे, आरे जिन जिन जापि पइयइ आनंदु ॥२ भावइ० ॥
आदिनाथगीतं ॥

४

॥ श्री राग ॥

पहिरि दाखिणु चीरु चंदणु लावइ सरीरु, सकल सिंगारु करइ ।
गजपति गति चालइ बोलइ चतुरपणि, कहु किसु मनु न हरइ ॥१॥
आ रे आजु काइ करिवो, सखी रे जिणह भुवनि जाइवो ॥द्र०॥
मुनिमेरु वदति वदन निरखियले परमाणंद भयो ।
जीराउलि प्रभु नवल निनादिं पारसनाथ जयो ॥२॥ रे आ आजु०

॥ इति जीराउलापार्श्वनाथगीतं ॥

५

[रागः] ॥ नाट ॥

सखी रे रहसु जले कवलु आजु तुझ चिति, अवरु न चाहइ रंगु ॥१॥
मोरा मनु लागिला, देखिनला पारसनाथ ॥द्र०॥
जयउ सु सोहागिलु अससेणर(रा)यां तनि, संगति यति मुनिमेरु ॥२॥
मोरा मनु लागिला, देखिनला पारसनाथ ॥द्र०॥
॥ पार्श्वनाथ गीतं ॥

६

[रागः] केदारा

पसुय देखि नेमि रथ वालिलइ टालिलइ पातगु कलिमलो ।
राजल काजल पूरित मुख देखी सखी रे वचन कहिलो ॥१॥
कवणु मति एहु लियली, किहां चातुरी नेह गहिली ॥द्र०॥
अपुचे रंगि रंगु सखी रे न कीजइ परचि रंगि रंगु भलो ।
वीतरागु नेमिनाथ न करइ नेहु, आपुचा तइ मनु लाइलो ॥ कवणु० ॥
रहु सखि पतंग रंगु न धरीजइ, मोरउ रंगु मंजीठ जिसो ।
अविचल सम्बन्धु नेमिराजीमती जले थिरु रंगु इसो ॥ कवणु० ॥
॥ इति नेमिनाथ गीतं ॥

७

[रागः] ॥ धनाश्रयी ॥

हितुअहितु विवेक विचारिलइ मनुरी गिलइ अजित जिण पाइ ॥१॥

परम लखु पाया रे, ऊपजेले अति आनंद ॥द्रू०॥

देवी विजयानंदनु जिनु जयउ, मुनि मेरु कहइ सरस सभाउ ॥२॥

परम लखु पाया रे, ऊपजेले अति आनंद ॥द्रू०॥

॥ अजितजिनेश्वरगीतं ॥

८

(राग) ॥ पूर्वी मलार ॥

अम्हचि सरीरि सो गुण नही, रीजवीजइ जिणि प्रभुचीत मुनागुरु रूवडउ मनि रे,

आरे कासी पुरपति जिननाथ ॥द्रू०॥

मेरु कहइ इकु अंतरंगु नेकु हइ, इतनइ जो होइ सु होउ । २ मुनागरू० ॥

इति बाणारसीपार्श्वनाथगीतं ॥

९

॥ कुमोदवइराडी ॥

चेतनारूपु आतमा विचारि विमोहि न मोहियला ॥१॥

सु तनु मनु रहसिला रे आणंदू पाइला ॥द्रू०॥

मेरु भणइ जिनभद्र सूरि पाटि जिनचंद्र सूरि देखिला ॥ २ सुतनुमनु०॥

इति जिनचंद्रसूरि गीतं ॥

एतानि गीतानि श्रीकमलसंयमोपाध्यायविनीतविनेयमुनिमेरुमुनिना कृतानि ॥

भद्रं॥छा॥

सप्तदश पूजा प्रकरण गार्भित शान्तिनाथ स्तवन

सं. मुनिसुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

जिनबिम्ब अने जिनचैत्य साथे संकळायेलुं एक अनोखुं अनुष्ठान एटले पूजा. प्रस्तुत काव्य सर्वोपचारीपूजाना भेदरूप गणाती सत्तरभेदी पूजानी संक्षिप्त पद्य रचना छे. कर्ताअे सत्तरभेदीपूजा पद्धतिने ४५ काव्योमां रजू करवा खूब सुन्दर प्रयास कर्यो छे. अन्तिम काव्योमां प्रतिमाजी न स्वीकारता जनोना मतनुं खण्डन करवा आगम ग्रन्थोनी साक्षी पण मूकी छे.

कर्ता श्रीसार खरतरगच्छनी क्षेमशाखामां थयेला वाचक रत्नहर्ष गणिना शिष्य छे. तेमणे सं. १६७८ मां गुणस्थानक क्रमारोह तेमज १६८१ मां जिनराजसूरि रास नामनी कृतिओ रची छे, तेवी जाणकारी मळे छे. प्रस्तुत काव्यनी ४३-४४मी कडीमां आवता 'फ्लवार्द्धिपुर' शब्द परथी आ कृतिनी रचना फलोधि(राज.)मां बिराजमान श्रीशान्तिनाथस्वामीने अनुलक्षीने थई होय एम लागे छे.

बीजां पण सत्तरभेदी पूजाना २ स्तवन प्राप्त थाय छे.

१. पू. पार्श्वचन्द्रसूरिजीम. (बृहत्तपागच्छ) गा. २९. सं. १६ मो सैको

२. पू. वीरविजयजी म. (खरतरगच्छ) सं. १६५३

जे ते वखतनी सत्तरभेदीपूजा-प्रकारनी लोकप्रियता सूचवे छे.

प्रस्तुत प्रतनी झेरोक्ष श्रीनेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरिजी ज्ञानभण्डारमां संगृहीत श्रीजामनगरना ज्ञानभण्डारनी छे. प्रत आपवा बदल बन्ने भण्डारोना व्यवस्थापकोनो आभार. आ ग्रन्थनी बीजी नकल न मळता एक प्रत उपरथी कृतिनुं सम्पादन थयुं छे.

सप्तदश पूजा प्रकरण गार्भित शान्तिनाथ स्तवनम्

सोलमो जिनवर सेवी(वि)येजी प्रहसम बे कर जोडि,

सुप्रसन वदन सुहामणोंजी, पूरें वंछित कोडि,

सोल.... १

मुझ मन मोहियो जिन गुणेजी, जिम मधुकर वणराय,

नांम सुण्यां मन उहूसैजी, लछिं लीला थिर थाय,

सोल.... २

तूं जगजीवन वालहोजी, तूं गति तूं मति देव !,	
माहरे चित्त तूं हि ज वस्योजी, तिण करू ताहरी सेव,	सोल.... ३
धन धन तेह ते(जे) ताहरीजी, पूजा रचै सुविचार,	
सुलभबोधि हीवे ते सदाजी, धन धन तसु अवतार,	सोल.... ४
रायपसेणिये सूविचारीयेजी, पूजा सतर प्रकार,	
अति घणो ऊलट आदरीजी, ते सूणिज्यो अधिकार,	सोल.... ५

ढाल-२ [नणदल जाति]

भगवंत पूजो भाविस्युं, त्रिकरण सुध त्रिकाल हो भवियण	
जिम सुख संपत्ति संपजे, फूले मनोरथ माल हो भवियण,	भगवंत.... ६
स्नान करि पूरव दिसे, करि पावन मनरंग हो भवियण	
पेहरि इकपट धोतियो, इकपट उत्तरासंग हो भवियण,	भगवंत.... ७
मस्तक तिलक सुहामणो, मुहमइ ठवि मुखकोस हो भवियण,	
पूजा इणपरि कीजीयें, छांडि रोगै-सोस (राग ने रीस?)हो भवियण,	भगवंत.... ८
लोहमहतो हाथे धरि, पूजा प्रतिमां देह हो भवियण	
हिव विस्तिर्ण पूजा रचो, आणी नवल नेह हो भवियण,	भगवंत.... ९

ढाल-३

सतरभेद पूजा सूणो, उत्तमनी अे करणी रे,	
गोत्र तिर्थकर बांधियइ, भावि भवभयहरणी रे,	सतर.... १०
गंगोदक खीरोदके, भरि भिंगार विसालो रे,	
पहिली पूजा कीजियें, प्रतिमाने पखालो रे,	सतर.... ११
पग-जानूं-कर-खंधे-सिरे, भाल कंठ पुजीजै रे,	
उरनइ उदरंतर वली, नव अंग तिलक करीजै रे,	सतर.... १२
केसरी भरी कचोलडी, मृगमद चंदन मेली रे,	
बीजी पूजा भली परे, -----	सतर.... १३

चउथि पूजा अति सुहउः, वासखेप वखाणो रे,	सतर.... १४

दमण-पाडल-केतकी, जाई, जूइ, मचकुंदो रे,
 विउलसिरी वनमालति, अति अदभुत अरविंदो रे, सतर.... १५
 इम विध विध पु(फु)ल्लावली, जिनचरणे विरचावे रे,
 पंचमी पूजा करे तिके, मनवंछित फल पावे रे, सतर.... १६

ढाल-चौथी

छठ्ठी पूजा हिवे सुणो रे, अतिसुगंध सुविशाल,
 जिनवर कंठे महमहे रे, विध-विध फूलांमाल,
 साहिब समरियै रे, सोलमो जिनवर संति भावइ भेटीयेरे,
 सो भयभंजण भगवंत, साहिब.... १७ (आंकणी)

जिन अंगि रची रे, बे पंचवरणा फूल,
 सुर-नर-किन्नर मोहिये रे, सातमी पूजा अमल, साहिब.... १८
 जिनवर अंगइ मोरी रे, कसतुरी - कपूर,
 ईण परि पूजा आठमी रे, करम करे चकचूर, साहिब.... १९
 प्रभु ऊपर पटकुलनी रे, रतन-जडत सुखकार,
 पंचवरणी धज लहे[रे] रे, नवमो एह प्रकार, साहिब.... २०

ढाल-पांचमी [अलबेलानी]

आभरणे अति दीपता रे लाल, सोहे संति जिणंद सुखकारि रे,
 मेरे मन तूं ही वस्यो रे लाल, दिन दिन अधिक आणंद सुखकारी रे...
 आभरणे.... २१

मस्तक मुकुट सुहांमणो रे लाल, बाहे बेहरखा सार सुखकारी रे,
 कांनं कुंडल झिगमगे रे लाल, उर मोतिनको हार सुखकारी रे....
 आभरणे.... २२

बिहु परि बे चामर वीजिये रे लाल, सिंहासन सिरदार, सुखकारी रे,
 तीन छत्र सिर ढालियै रे लाल, दसमी पूजा उदार सुखकारी रे,
 आभरणे.... २३

दमणो-मरुओ-केतकी रे लाल, फूल घणा ईम मेलि सुखकारी रे,
 आभरणे.... २४

फूलमहल रचिये भलो रे लाल, फूलतोरण सुविसाल सुखकारी रे,
 फूल तणां तिम चंद्रूआ रे लाल, फूलारी वन्नरमाल सुखकारी रे,
 आभरणे.... २५

फूल तणां झुंबखा भला रे लाल, फूलमंडप ससनेह सुखकारी रे,
 फूलघरइ मन मोहियो रे लाल, इग्यारमी पूजा अेह सुखकारी रे,
 आभरणे.... २६

ढाल-छट्टी [राग० खंभायती]

जानु प्रमाणे देवता रे, फूलपगर वरसावै रे,
 सरस सुगंध सुहामणो रे, जोजन फूल बिछावै रे,
 सुभ भावरसु, भवियण जिनवर पूजियइ रे,
 मनरंगेसु, मानवभव सफलो कीजीयै रे (आंकणी) २७

पग देतां पिडा न ह्वै रे, जिन अतिशय परभ(भा)वे रे,
 फूलपगर ईम किजिये रे, बारमी पूज सुहावै रे, सुभ भाव.... २८
 दर्पण भद्रासन भलो रे, नंघावर्त्त प्रधांनो रे,

पूरणकलस सम जग सहि रे, श्रीवछ नै ब्रधमानो रे, सुभ भाव.... २९

आठमो मंगल साथीयो रे, जिनवर आगल कीजै रे,
 इम पूजा करि तेरमी रे, नरभव लाहो लीजे रे, सुभ भाव.... ३०

कृष्णागर ऊखेविये रे, धूप कडूछओ आंणी रे,
 गुरू सेल्हारम धूपणा रे, चवदमी पूज सूंहाणी रे, सुभ भाव.... ३१

ढाल-सातमी

श्रीजिनवर गुण गाइयइं, सुंदर सकल सरूप,
 सातस्वर निरला सजी(?) पनरमी पूज अनूप, श्री.... ३२

हिवै नाचे देवांगना, सजि सोलह सिणगार,
 घम घम वाजै घूघरा, पाये नेउर झणकार, श्री.... ३३

चंद्रमुखी इणपरि करै, नाटक बद्ध बत्रीस,
 थेइ थेइ सबद सुहामणो, गावे राग छत्रीस, श्री.... ३४

सोलमी पूजा ए कही, हिवै वाजे वाजिन्न

मदल ताल-कंसालिया, झल्लरी संख पवित्र,	श्री.... ३५
वाजै वीणा-वांसली, वाजै जंगी ढोल	
मदनभेर वाजै भली, गीतारां रमझोल,	श्री.... ३६
सत्तरभेद पूजा कहि, सूत्र तणै अनुसार	
भाव धरी जै नर करें, तसुं धर जयजयकार,	श्री.... ३७

ढाल-आठमी

जिनप्रतिमा जिन सारखी रे, मुख श्रीजिनवर भाखी रे,	
इहां संसय कोइ नहि, श्रीसुधरमास्वामि साखी रे,	जिन.... ३८
मूढ कदाग्रह-वाहिया, जिनप्रतिमाजी नवि माने रे,	
ते पापे पोतो भरें, परमारथ मूल न जाणै रे,	जिन.... ३९
सु(सू)रियाभे किधी सहि, ईम पूजा सतर प्रकारी रे,	
द्रूपद सुता वली द्रूपदी, श्रीज्ञाताअंग विचारि रे,	जिन.... ४०
परभावती पूजी वली, प्रतिमा पहनावागरणे रे,	
श्रीपंचमअंगै कहि, जिनप्रतिमा त्रीजे सरणे रे,	जिन.... ४१
आद्रकुमार मत निरमली, प्रतिबूधो प्रतिमा देखी रे,	
तिण कारण पूजो सदा, जिनप्रतिमां अतिस्य वसेषी रे,	जिन.... ४२
द्रव्य अनें भावे करी, मनरंगै पूजा कीजै रे,	
फलवर्द्धिपुरमंडण सदा, श्रीसंतनाथ समरीजे रे,	जिन.... ४३
मेह वसै मोरां मनइ, जिम समी मनइ भरतारो रे,	
तिम मुझ मन जिनवर वसै, श्रीफलवर्द्धिपुर सिणगारो रे,	जिन.... ४४

कलस-

इम नयन-दिसि-ससिकलावरसै(१६४२), मास आसू सुख भणि
 फलवर्द्धिमंडण दूरितखंडण, संथूण्यो त्रिभुवनधणी,
 श्रीरतनहरख मुनिंद वाचक पूरवै सुखसंपदा,
 श्रीसार साहिब हुआ सुप्रसन, सोलमो जिनवर सदा

॥ इति सप्तदशपूजाप्रकरणार्भितश्रीसंतनाथस्तवनम् ॥श्री॥

ढाळ/गाथा	शब्द	=	अर्थ
१/४	हीवे	=	थाय
२/९	लोहमहथो	=	
३/१०	भिंंगार	=	भुंगार : पूजानी थाळी
३/१३	कचोलडी	=	वाटकी
३/१४	सुहउ	=	सुखद
३/१५	विउलसिरी	=	बकुलना वृक्षनुं फूल
३/१६	पु(फू)ळांवली	=	पुष्पोनी श्रेणि
४/१९	मोरी	=	धरिये
४/२०	पटकुल	=	उत्तम रेशमी वस्त्र
५/२५	चंद्रूआ	=	चंदरवा
५/२५	वन्नारमाल	=	तोरण
६/३१	कडूछओ	=	कडछो
७/३५	मदलताल	=	मृदंगनो ताल
७/३५	कंसालिया	=	कांसाजोडी प्रकारनुं वाद्यविशेष
७/३६	मदनभेर	=	मदनभेरी : उत्सवनुं नगारुं
७/३६	गीतारां	=	गीतोनां
८/३९	कदाग्रह वाहिया	=	कदाग्रह धरनारा
८/३९	पोतो (पोतउ)	=	भंडार

અજ્ઞાતકર્તૃક શ્રીસમ્યક્ત્વસ્તવન

- સં. મુનિ સુયશચન્દ્ર-સુજસચન્દ્રવિજયૌ

અજ્ઞાત કવિ રચિત પ્રસ્તુત સ્તવનામાં પ્રભુવીરને નમસ્કાર કરીને સમ્યક્ત્વ પામવાની પ્રક્રિયાને કર્તાએ ઓછા પળ સુંદર શબ્દોમાં રજૂ કરી છે.

સમ્યક્ત્વ પામતા જીવના ત્રણ કરણ-સમ્યક્ત્વના પ્રકાર-કયું સમ્યક્ત્વ કેટલી વાર હોય ? કયા કયા ગુણઠાળે હોય ? અને કેટલી વાર પમાય વગેરે બાબતોને અને અંતે સમ્યક્ત્વના ૬૭ બોલને બાલભોગ્ય શૈલીમાં વર્ણવ્યા છે. કર્તાનો ક્યાંક-ક્યાંક કરેલો શ ને બદલે સ નો પ્રયોગ અને અનુસ્વારોનો પળ છૂટા હાથે કરેલો પ્રયોગ દેખાય છે.

- પ્રત ૧૮૧૧માં મુમાઈ (મુંબઈ) બંદરે શ્રી ગોડિપાર્શ્વનાથના જિનાલયમાં લખાયેલ છે.

- કર્તા સમ્બન્ધી કોઈપણ નોંધ અન્ય કોઈ ગ્રન્થમાં મઢી નથી.

પ્રતની ઝેરોક્ષ શ્રીનેમિ-વિજ્ઞાન-કસ્તૂરસૂરિજી જ્ઞાનભળ્ડારમાં સંગ્રહીત શ્રીનેમિચંદ મેલાપચંદ ઝલ્લેરી (સુરત-વાડી) ના ઉપાશ્રયની છે. પ્રતની સ્થિતિ-અક્ષર સુંદર છે. ત્રણ પાનાની પ્રસ્તુત કૃતિ આપવા બદલ બત્રે ભંડારના વ્યવસ્થાપકોનો આભાર. બીજી પ્રતિ ન મઢતા ઈક પ્રતિ ઉપરથી આ રચનાનું સંપાદન થયું છે.

[નોંધ : આ રચનાની અન્તિમ કડીમાં 'પુણ્ય મહોદય' ઈવો શબ્દ છે, તે કદાચ સ્તવનના કર્તાના ઉલ્લેખપરક હોય તો સમ્ભવિત છે. પુષ્પિકામાં "બેહેન રાજાબાઈ પઠનાર્થ" ઈમ ઉલ્લેખ છે, તે પ્રખ્યાત શેઠ પ્રેમચંદ રાયચંદનાં માતુશ્રી રાજાબાઈ (રાજાબાઈ ટાવર વાઢ્યાં) તો ન હોય ? સ્તવન, જૈન ઢર્શનના તાત્ત્વિક પઢાર્થ 'સમ્યક્ત્વ'ની પ્રક્રિયાનું, સામાન્ય કે અજૈન વાચક માટે ગહન લાગે તેવું વર્ણન, જૈન શાસ્ત્રીય પરિભાષામાં, આપે છે. -શી.]

॥ ८९ ॥ श्री गुरुभ्यो(भ्यो) नमः ॥

- (दु)दूहा - समकितदायक वीरना, पद पंकज प्रणमेवि,
समकितसार संखेपथी, कहेंसु तवन करेवि ... १
स्वामि तुझ दरिसन विना, भमिओ काल अनंत,
मोहादिक वैरी वसें, चहुं-गति दुःख दुरंत ... २
ढाल-१, राग - तेह पुरुष हवें वीनवेंजी ।
कोइक जीव तिहां लहेंजी, कर्म तणो स्थितिघात,
यथाप्रवृत्तिकरणें करीजी, पल्योपल (नद्योपल?) दृष्टांत,
उपगारी अरिहा, वंदो वीर जिणंद.... १ (ए आंकणी०)
तिहां पण गांठ अभेदतोजी, रागनें द्वेष प्रणांम,
समकित जीव नवी(वि) लहेंजी, तुझ दरी(रि)सण सुखधाम, उपगारी.... २
पंथी पिवीली न्यायथीजी, कोइक सन्नि पजत्त,
पुद्गलअर्द्धपरावर्तेजी, पहेलुं करण संपत्त, उपगारी.... ३
आयु वर्जित सातनीजी, कर्मस्थिति अवसेस,
न्यून कोडाकोडी(डि) रहेंजी, निर्जरा योग विशेष उपगारी.... ४
करण अपूरव मोगरेंजी, करतो गंठी(ठि) नो भेद,
अंतरमुहुर्त विशुद्धतोजी, अनिवृत्तिकरण सुवेद, उपगारी.... ५
अनिवृत्तिकरणें रद्दोर्जीं, स्थिति होइं बिहुं तांम,
अंतरमुहुर्तनी भोगवेंजी, पहेंली आतमराम, उपगारी.... ६
अनुदित बीजी तें रहेंजी, अंतरकरण पेंसंत,
पहिलें समयें तव होइंजी, उपशमसमकितवंत, उपगारी.... ७
ओषध सम ते समकितेंजी, रही स्थितिना त्रण्य भाग,
कोद्रव सम पहेंलो करेंजी, शुद्ध ते समकित भाग, उपगारी.... ८
शुद्धाशुद्ध बीजें रहेंजी, एहवें काल पहुत्त,
शुद्ध पुंज उदयें होइंजी, खयोपशमें संयुत्त, उपगारी.... ९
शुद्ध कर्या जिम कोद्रवाजी, न करें तें मोहविकार,
जातिस्वभाव नवी तजेंजी, समकित तिम अतिचार, उपगारी.... १०
अशुद्धपुंजे मिथ्यामतीजी, शुद्धाशुद्ध ते मीस,
इम भाखे जगनो गुरुजी, वीर विभू जगदीस, उपगारी.... ११

दुहो -

- धन धन श्रीजिन ताहरो, आगम अर्थ अपार,
 स्यादनुबंधइं सोभतो, सकल पदारथ सार १
- कुमति-कदाग्रह योगथी, जाणें नही तसु मर्म,
 सुमति सदा सेवनकरी, पामें अवी(वि)चल शर्म २

ढाल-२, राग - ललनां० ए देशी ।

- एग-दु-ति-चउ-पंचहा, समकी(कि)त भेद विचार ललनां,
 भाख्यां ते प्रभु समयमां, भवि जननें उपकार ललनां,
 धन धन श्रीजिनवरजी १
- त्रिविधे जे तुझ वचनथी, सद्दहणा सुभ रीत ललनां,
 एगविध ते जांणीइं, तुझसुं अडप्रीति प्रीत ललनां, धन धन.... २
- द्रव्य-भाव बिहुं वली, निश्चयनें व्यवहार ललनां,
 प्रापति तसु उपदेशथी, अहवा निसर्ग विचार ललनां, धन धन.... ३
- कारक-रोचक-दीपकें, त्रिविध कहें तुं वीर ललनां,
 खयोपशम ख्याइक वली, उपशमें अहवा धीर ललनां, धन धन.... ४
- सासायण युत जांणीइं, चहुं भेदे सुखदाय ललनां,
 वेदक युत गुण पंचहा, लहीइं तुझ पसाय ललनां, धन धन.... ५
- मोह तणा उपसम भणी, उपशमसमकित हुंत ललनां,
 पुंज विशुद्धनें वेदतां, खयोपशम गुणवंत ललनां, धन धन.... ६
- खीण बिहुं पुंजे होइं, अंतिम पुंजनो सेश (शेष) ललनां,
 वेदकसमकित ते वदैं, ख्याइकपरि शुभलेश ललनां, धन धन.... ७
- सप्तक क्षीण थया पछी, ख्याइक समताकंद ललनां,
 आयुबंधें विचि भव करी, पामें पूर्णानंद ललनां, धन धन.... ८
- समकित वमतां स्वाद जे, सास्वादन तसु नाम ललनां,
 षट यावलिका तेहनुं, मान कहें तुं स्वामि (मी) ललनां, धन धन.... ९
- साधिकतेत्रीससागरु, ख्याइक काल प्रमाण ललनां,
 खयोपसमें छासठिनुं, वेदक समय प्रधान ललनां, धन धन.... १०

अंतरमुहूर्त इहां कहें, उपशमसमकितयोग ललनां,
शास्त्रमांहें वी(वि)स्तार घणा, दीजें तिहां उपयोग ललनां, धन धन.... ११

दुहा-

वर्धमानं जिनेस्वरू, त्रिभुवनतिलकसमानं,
महेर करी मुझ आपजो, समकित शुद्ध निदानं १
अगणित अवगुण माहरा, तुं प्रभु तारणहार,
ते माटें तुझने कहुं, भवजल पार उतार २

ढाल-३, कोइलो परवत धुंधलो रे लो० ए देशी ।

वेदक-क्षायिक पामीइं रे लो, भव भमता एक वार रे जिणेसर,
उपसम- आस्वादन लहें रे लो, उत्कृष्टं पंच विचार रे जिणेसर,
वीरजी वचन सोहामणां रे लो, मीठां अमीअ समानं रे जिणेसर, वीरजी...१
(ए आंकणी)

वार असंख्य विमासजो रे लो, खयोपशम गुणवंत रे जिणेसर,
बीजें गुणठाणें भलु रे लो, आस्वादन शुभवंत रे जिणेसर, वीरजी.... २
तुर्यादिक मन धारजो रे लो, अड-इग्यारसुं ठाण रे जिणेसर,
चउ-चउ उवसम ख्याइगो रे लो, वेदक क्षयोपशम जाण रे जिणेसर, वीरजी... ३
चार श्रद्धानं त्रि लिंग च्छें रेलो, दशविध विनय प्रकार रे जिणेसर,
त्रिण शुद्धि आठ प्रभावक रे लो, पांचें दोष परिहार रे जिणेसर, वीरजी.... ४
छविहा जयणागारस्युं रे लो, लक्षण भूषण पांच रे जिणेसर,
षट भावना सम भावीइं रे लो, छ ठाणें भवि राचि रे जिणेसर, वीरजी.... ५
ए सडसट्ट सोहांमणां रे लो, धरजो निरमल अंग रे जिणेसर,
सार विचार संखेपथी रे लो, भाख्यो समय प्रसंग रे जिणेसर, वीरजी.... ६
आज मनोरथ सवि फल्या रे लो, थुणिया वीर जिणंद रे जिणेसर,
पुण्य महोदय सेवतां रे लो, प्रगटें सहजानंद रे जिणेसर, वीरजी.... ७

॥ इति श्रीसम्यक्त्व स्तवनं संपूर्ण ॥

संवत् १८९९ वर्षे लख्युं छे । श्री मुमाईबिंदरे । श्री गोडीजी प्रासादात् । बेंहन
राजाबाई पठनार्थः श्रीकल्याणमस्तु ॥ श्रीसुरतबिंदरे श्रीवडेचउटें पांनां पोचें ।

पण्डित विशालमूर्ति रचित श्रीधरणाविहार चतुर्मुखस्तव

- म. विनयसागर

विश्व प्रसिद्ध तीर्थस्थलों में आबू तीर्थ के अतिरिक्त शिल्पकला की सूक्ष्मता, कोरणी और स्तम्भों की दृष्टि से राणकपुर का नाम लिया जाता है। धरणिगशाह ने पहाड़ों के बीच में जहाँ केवल जंगल था वहाँ त्रिभुवनदीपक नामक/धरणिकविहार जैन मन्दिर बनवाकर तीर्थयात्रियों की दृष्टि में इस तीर्थ/स्थान को अमर बना दिया। अमर बनाने वाले श्रेष्ठी धरणाशाह और तपागच्छके आचार्य सोमसुन्दरसूरि का नाम युगों-युगों तक संस्मरणीय बना रहेगा।

इस तीर्थ से सम्बन्धित पण्डित विशालमूर्ति रचित श्रीधरणाविहार चतुर्मुख स्तव प्राप्त होता है। जिसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :-

प्रतिका माप २५ x ११ से.मी. है। पत्र संख्या ३ है। प्रति पृष्ठ पंक्ति संख्या १३ हैं और प्रति पंक्ति अक्षर लगभग ३६ से ४० हैं। स्थान-स्थान पर पडीमात्रा का प्रयोग किया गया है। लेखन प्रशस्ति इस प्रकार है :-

सं० लाखाभा० लीलादे पुत्री श्रा० चांपूठनार्थं । लिखतं पूज्याराध्य

पं० समयसुन्दरगणिशिष्य पं० चरणसुन्दरगण शिष्य

हंसविशालगणिना ।

इसका समय १६वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है।

प्रान्त पुष्पिका में समयसुन्दर गणि का शिष्य चरणसुन्दर लिखा है। गुरु और शिष्य दोनों सुन्दर हैं अतएव ये दोनों खरतरगच्छ के हों ऐसी सम्भावना नहीं है। सम्भवतः सोमसुन्दरसूरि के समय ही उनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में हों।

इस स्तव के कर्ता पण्डित विशालमूर्ति के सम्बन्ध में कोई परिचय

प्राप्त नहीं होता है। केवल कृति पद्य ३१ के अनुसार ये श्री सोमसुन्दरसूरि के शिष्य थे। इस रचना को देखते हुए मन्दिर के निर्माण और प्रतिष्ठा में इनकी उपस्थिति हो ऐसा प्रतीत होता है। अतएव कृतिकार का समय १५वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और १६वीं शताब्दी का प्रथम चरण माना जा सकता है। इनकी अन्य कोई कृति भी प्राप्त हो ऐसा दृष्टिगत नहीं होता है।

श्री सोमसुन्दरसूरि का समय इस शताब्दी का स्वर्णयुग और आचार्यश्री को युगपुरुष कहा जा सकता है। तपागच्छ पट्ट-परम्परा के अनुसार श्री देवसुन्दरसूरि के (५० वें) पट्टधर श्रीसोमसुन्दरसूरि हुए। इनका जन्म संवत् १४३०, दीक्षा संवत् १४४७ तथा स्वर्गवास संवत् १४९९ में हुआ था। आचार्यश्री अनेक तीर्थों के उद्धारक, शताधिक मूर्तियों के प्रतिष्ठापक, साहित्य सर्जक और युगप्रवर्तक आचार्य थे। तपागच्छ पट्टावली पृष्ठ ३९ की टिप्पणी के अनुसार उनके आचार्य शिष्यों की नामावली दी गई है। तदनुसार मुनिसुन्दरसूरि, जयसुन्दरसूरि, भुवनसुन्दरसूरि, जिनसुन्दरसूरि, जिनकीर्तिसूरि, विशालराजसूरि, रत्नशेखरसूरि, उदयनन्दीसूरि, लक्ष्मीसागरसूरि, सोमदेवसूरि, रत्नमण्डनसूरि, शुभरत्नसूरि, सोमजयसूरि आदि आचार्यों के नाम प्राप्त होते हैं। तपागच्छ पट्टावली पृष्ठ ६५ के अनुसार इनका साधु समुदाय १८०० शिष्यों का था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय के प्रौढ़ एवं दिग्गज आचार्यों में इनकी गणना की जाती थी। श्रीहीरविजयसूरिजी के समय में भी इतने आचार्यों के नाम प्राप्त नहीं होते हैं। साधु समुदाय अधिक हो सकता है। वर्तमान अर्थात् २०वीं शताब्दी के आचार्यों में सूरिसम्राट श्रीविजयनेमिसूरि का नाम लिया जा सकता है। जिनके शिष्यवृन्दों में दशाधिक आचार्य थे। समुदाय की दृष्टि से तुलना नहीं की जा सकती है।

वर्ण्य-विषय

कवि प्रथम पद्य में नाभिनरेश्वरनन्दन को नमस्कार कर राणिगपुर निवासी प्राग्वट वंशीय धरणागर का नाम लेता है और उनके गुरु तपागच्छनायक श्रीसोमसुन्दरसूरि को स्मरण करता है। उनकी देशना को सुनकर संघपति धरणागर ने आचार्य से विनति की कि आपकी आज्ञा हो तो मैं चतुर्मुख जिन मन्दिर का निर्माण करवाना चाहता हूँ। आचार्य की स्वीकृति प्राप्त होने पर

संघपति ने ज्योतिषियों को बुलाया और उनके आदेशानुसार संवत् १४९५ माघ सुदि १० को इसका शिलान्यास/खाद मुहूर्त करवाया । मन्दिर की ४६० गज की विशालता को ध्यान में रखकर गजपीठ का निर्माण करवाया गया । (पद्य १-६)

भविजनों के आने-जाने के लिए मन्दिर के चारो दिशाओं में चार दरवाजे बनवाए । पीठ के ऊपर देवछन्द बनवाया और चारों दिशाओं में सिंहासन स्थापित किए । चारों दिशाओं में ४१ अंगुलप्रमाण की ऋषभदेव की प्रतिमा स्थापित की और संवत् १४९८ फाल्गुन बहुल पंचमी के दिन श्रीसोमसुन्दरसूरिजी से प्रतिष्ठा करवाई । (पद्य ७-९)

चारों शाश्वत जिनेश्वरों की प्रतिमाएँ विमलाचल, रायणरूख, सम्मेतशिखर, अष्टापदगिरि और नन्दीश्वरद्वीप की रचना कर ७२ बिम्ब स्थापित किए । दूसरी भूमि में देवछन्द और मूल गम्भारों में उतनी ही प्रतिमाएँ स्थापित की । यहाँ ३१ अंगुल की मूर्तियाँ थी । चारों दिशाओं और विदिशाओं में आदिनाथ भगवान की मूर्तियाँ स्थापित की गई ।

तृतीय भूमि अर्थात् तीसरी मंजिल पर इक्कीस अंगुल की प्रतिमाएँ विराजमान की गई और मूर्तियों का पाषाण मम्माणी पाषाण ही रहा । तृतीय मंजिल के शिखर पर ३६ गज का शिखर बनाया गया । ११ गज का कलश स्थापित किया गया और लम्बी ध्वजपताका पर घुंघरुओं की घण्टियाँ लगाई गई । (१०-१५)

सोलहें वस्तु छन्द में पद्याङ्क ७ से १५ सारांश दिया गया है । यह मन्दिर चहुमुख है । स्तम्भों की कोरणी कलात्मक है । मण्डप में तीन चौवीसियों की स्थापना की गई है । मन्दिर की शोभा इन्द्रविमान के समान है । ४६ पूतलियाँ लगाई गई है । अन्य देशों के यात्री संघ आते हैं, स्नात्र महोत्सव करते हैं और प्रसन्न होते हैं । मेघ मण्डप दर्शनीय है । तीन मंजिलों पर तीर्थकरों ने यहाँ अवतार लिया हो इस प्रकार का यहाँ प्रतीत होता है । मन्दिर में भेरी, भुंगर, निशाण आदि की प्रतिध्वनि गूँजती रहती है । गन्धर्व लोग गीत-गान करते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिर के सन्मुख बारह देवलोक की गणना ही क्या है ? (पद्य १७-२१)

उत्तर दिशा में अष्टापद की रचना की गई है। नालिमण्डप है, जहाँ सहस्रकूट गिरिराज की प्रतिमाओं का स्थापन किया गया है। दक्षिण दिशा में नन्दीश्वर और सम्मेतशिखर की रचना की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह धरणविहार महीमण्डल का सिणगार है और विन्ध्याचल के समान है। विदिशा में ४ विहार बनाए गए हैं। पहला विहार अजितनाथ और सीमन्धरस्वामी से सुशोभित है जिसका निर्माण चम्पागर ने करवाया। दूसरा विहार महादे ने करवाया है जहाँ शान्तिनाथ और नेमिनाथ विद्यमान हैं। तीसरा विहार खम्भात के श्रीसंघ ने करवाया जिसमें पार्श्वनाथ प्रमुख है। चौथा महावीर का विहार तोल्हाशाह ने बनवाया है। इन लोगों ने अपनी लक्ष्मी का लाभ लिया है। ऐसा मालूम होता है कि तारणगढ़ (तारङ्गा), गिरनार, थंभण और सांचोर जो पञ्चतीर्थों के नाम से प्रसिद्ध हैं वे यहाँ आकर विराजमान हो गए हैं। चारों दिशाओं में आठ प्रतिमाएँ हैं जो ३३ अंगुल परिमाण की हैं। मन्दिर में ९६ देहरियाँ हैं। ११६ मूल जिनबिम्ब हैं। मण्डप २० हैं। ३६८ प्रतिमाएँ हैं। देवविमान के समान शोभित हो रहा है और राय एवं राणा यह सोचते हैं कि यह किसी देव का ही काम हो इसलिए राणा इसे त्रिभुवनदीपक कहते हैं। पीछे की शाल शोभायमान है। कंगुरों से शोभित है। समवसरण, चारसाल के ऊपर गर्जसिंहल है। इस मन्दिर में साठ चतुर्मुख शाश्वत बिम्ब हैं। धरणागर सेठ ने अति रमणीय मन्दिर राणकपुर में बनवाया है और बड़े महोत्सव के साथ दानव, मानव और देवता पूजा करते हैं। (पद्य २२-३०)

३१वें पद्य में कवि अपना परिचय देता हुआ कहता है कि पण्डित विशालमूर्ति तपागच्छ नायक युगप्रवर श्रीसोमसुन्दरसूरि के चरणों की प्रतिदिन सेवा करता है और इस धरणविहार का भक्ति से स्मरण करता है। इसका स्मरण करने से शाश्वत सुख प्राप्त होते हैं।

भाषा छन्द आदि

यह रचना अपभ्रंश मिश्रित मरुगुर्जर में लिखी गई है। वस्तुछन्द आदि प्राचीन छन्दों का प्रयोग किया गया है। ठवणी और भाषा किस छन्द के नाम हैं, ज्ञात नहीं? पद्य ५-६ में धरणिन्द के स्थान पर धरणिग ही समझे।

विशेष

मेरे द्वारा लिखित कुलापाक तीर्थ माणिक्यदेव ऋषभदेव नामक पुस्तक में लेखांक ११ से यह तो प्रमाणित है कि सोमसुन्दरसूरि के प्रमुख भक्त श्रेष्ठी गुणराज ने संवत् १४८१ में कुलापाकतीर्थ की यात्रा की थी। इस लेख में धरणिक का नाम आता है। यह धरणिक राणकपुर मन्दिर के निर्माता थे या गुणराज के पूर्वज थे यह स्पष्ट नहीं होता। लेखांक १०अ में भी गुणराज, सहसराज का नाम आता है। लेखांक ७ब के अनुसार सोमसुन्दरसूरि के शिष्य भुवनसुन्दरसूरि, ज्ञानरत्नगणि, सुधाहर्षगणि, विजयसंयमगणि, राज्यवर्धनगणि, चारित्रराजगणि, रत्नप्रभगणि, तीर्थशेखरगणि, विवेकशेखरगणि, वीरकलशगणि और साध्वी विजयमती, गणिनी संवेगमाला आदि के खण्डित शिलालेख प्राप्त होता हैं। लेखांक ८ संवत् १४७९ में भुवनसुन्दरसूरि का नाम प्राप्त होता है। लेखांक ९ संवत् १४८१ के लेख में श्रीसोमसुन्दरसूरि ने माणिक्यदेव आदिनाथ की यात्रा की थी यह उल्लेख भी प्राप्त होता है।

यह स्तव ऐतिहासिक स्तव है और राणकपुर आदिनाथ मन्दिर का पूर्ण परिचय देता है अतः उसका मूल पाठ दिया जा रहा है :-

॥ ६० ॥

पणमिय नाभिररेसर नन्दन, गाइसु तिहूअण नयनानन्दन
 चुमुख धरण विहार
 सोहइ सुरपुर सम राणिगपुर, तिहां वसइ संघपति धरणागर
 प्रागवंश सिणगार ॥१॥
 अनुक्रमि तवगच्छनायक सुहुगुरु, विहरन्ता पुहता राणिगपुर
 सुरतरुनिय परिसार
 सिरिसोमसुन्दरसूरि पुरन्दर, भविककमलवनबोधनदिनकर
 जुगवर कमलागार ॥२॥
 अमिय समाणि तसु मुखि वाणी, निसुणीय संघपति निय मनि आणी
 विनवय जोडी पाणि
 भगवन तुम उपदेश ऊपनु, भाव करावा श्रीचुमुखनु
 हुँ मुझ तुम पसाउ ॥३॥

पछइ संघपति लगन गिणाया, पण्डित जोसी खेवि तेडाव्या
 आव्या सुहगुरु पासि
 संवत चरुद वरिस पंचाणु, माह बहुल नवमीनिसि तक्खणु
 दसमी दिवस मुहाण ॥४॥

मण्डय धरणिन्द भिड पूरावइ, विसासु गजपीठ बंधावइ
 आवइ आणंद पुरि
 दिन-दिन वाधइ अति दीपन्तु, वीझ महागिरि रइ जीपन्तु
 खेयन्तु भव दूरि ॥५॥

॥ वस्तु ॥

चुमुख कारणि चुमुख कारणि बहुय वीस्तार,
 विसासउ गज पिहुल पणि साठ च्यार
 सइ परिधि विस्तार
 इण परि पीठ बन्धावि करि हरख पूरि धरणिन्द सादर
 सोमसुन्दर सुहगुरु तणउ निसुणीय वयण विचार
 शुद्ध दिवस मण्डाविउ सोहइ धरण विहार ॥६॥

॥ ठवणि ॥

नीपनां ए अतिसुविशाल सोहइ च्यारइ बारणां ए
 चिहुं दिसिइए आवता जाणि भवियण लोअण पारणां ए
 दीपतां ए पीठ ऊपरि देवछन्दइ विस्तर घणा ए
 चिहुँदिसिइं ए मण्डय च्यारि सिंहासण जिणवर तणां ए ॥७॥
 च्यारइ ए एकतालीस अंगुलमाण जुगादिजिण
 थापिवा ए मण्डउ जङ्ग सङ्घपति पूछिय सुद्ध दिण
 सिरिगुरु ए तवगछराय सोमसुन्दरसूरि करकमलि
 प्रतिट्टिया ए संवत् चरुद अट्टाणु फागुण बहुलइं ॥८॥
 पंचमइं ए परमाणंद चन्दन केसरि पूज करि
 झलकता ए मूलनायक कंचणमय आभरण भरिय
 थापिया ए चिहुँदिसिइं सार परगरसि उंपरि वारिया ए
 जाणइं ए धरणिन्द आज काज सवें मइं सारिया ए ॥९॥

सासता ए जिणवर च्यारि जाणे विमलाचल सहिय
 फेडइ ए रायण रूख दूख सवे पासइं रहिय
 सोहइ ए सिरिसम्पेतसिहर अड्डावइ गिरिवरू ए
 अभिनवां ए बहुतरी बिम्ब बावन नन्दीसर वरू ए ॥१०॥

एतला ए सवि अवतार देवछन्द इर्मि भाविया ए
 बीजा ए जे अवतार मूल गम्भारइ ठाविया ए
 अनेरां ए जे छई बिम्ब भावइं भगतिइं ते थुणीय
 च्याल्या ए बाहिरि हेव जिणवर सवि जे ती भणीय ॥११॥

हरखिया बीजि भूमि पावडिया रे तिहिं चडइं ए
 पूजिवा ए आवइं रंगि इगतीस अंगुल वडवडइ ए
 चिहुं दिसिइं ए तिहिं अवधारि बइठा आदिल विविह परइं
 उससइं ए भवियण काय देखीय मूरति भगति भरइं ॥१२॥

त्रीजी ए भूमि विचार इगवीस अंगुल आदिजिण
 तिणिपरइं ए मन उह्वासि पूजुं पणमुं भवियजण
 बारइ ए मूलनायक मम्माणी षाणी तणा ए
 अवतरिया ए जाणे बार दिनकर महियलि दीपतां ए ॥१३॥

विदिसइं ए सिखरसिंगार बार-बार जिण जूजूया ए
 सीलमइं ए चंपकमाल सासय पूजा पूजिया ए
 उंचउ ए गज छत्रीस अनुपम शिखर त्रिभूमिवर
 जोयतां ए सोभसंभार भवियण मण उल्हासकर ॥१४॥

राजतु ए सोवंनवंन इग्यारइ गज उंचपणि
 झलक्तु ए उंचउ दंड कलस पुरिस परिमाण पुण
 घमघमइं ए घूघरमाल लंब पताका लहलहइं ए
 नाचती ए जाणे रंगि संघपति कीरति गहगइं ए ॥१५॥

॥ वस्तु ॥

चारु चउमुख चारु चउमुख रिसहजिणनाह
 संघपति धरणिंद करेविअ, सुगुरु पासि पइइट्ट सारिअ

तीरथ सवि अवतार तिणि, देवछंद दिप्पंत कारिअ
त्रिहुं भूमे भासुर सिहर कोरणी ए सुविशाल
दंडकलश सोवंनमइ दीसइं अतिहिं झमाल ॥१६॥

॥ ठवणी ॥

चउमुख चिहुं पखि चाहीइ तु भमरुलीभर मह तणु विचार
पुतली सोहइं ए नवनवी तु भ० जाणे रंभाकार
थंभे तोरण धोरणी तु भ० कोरणी दीसइं सार
मूलमंडपि जव आविआ तु भ० मनमोहइ अपार ॥१७॥

त्रिन्नि चउवीसी जिणइ तणी तु भ० मंडप तणइ वितानि
तिहूअण सोभा संकली तु भ० जाणे इंद्रविमाण
पूतली छइतालीस करइं तु भ० नितु नाटक रंगरोल
जाणे अपछरदेव तु भ० आविय करइं टकोल ॥१८॥

पंच वंन सोहामणी तु भ० गूहली तलगटि चंग
तिहां बइसइं कुलकामिनी तु भ० गाइं जिण गुणरंगि
नितु नितु देस विदेस तणा तु भ० आवइं संघ अपार
स्नात्र महोत्सव नितु करइं तु भ० महाधज दीजइं सार ॥१९॥

मेघमंडप ऊमाहडउ तु भ० करिवा लोअणसार
त्रिहुं भूमे त्रिभुवन तणा तु भ० जाणे इंहि अवतार
कोरणी वरणनइं नहीं तु भ० पूतली नानाकार
नाटक लकुटी रसरमइं तु भ० भवियण त्रिन्हइ वार ॥२०॥

भेरि भूंगल नीसाण तणु तु भ० गाजइं गुहिरु नाद
गुणगाइं घणा तु भ० बइसी मधुरइ सादि
त्रिणि त्रिणि मण्डप चिहुं दिसइं तु भ० चुमुखि इणि परिवार
देवलोक बारइं किसुं तु भ० अवतरिया खाकइं वार ॥२१॥

॥ भाषा ॥

उत्तरदिसइं दोइ दीपतां ए माल्हंतडि अष्टापद प्रासाद
 बीजु कल्याण त्रय तणु ए मा० चुमुखसिं लिइ वाद
 नालिमंडप मंडावीउ ए मा० सहसकूट गिरिराज
 प्रतिमां सह सवि पूजतां ए मा० सीझइं भवियण काज ॥२२॥
 दक्षिण दिसि नंदीसरू ए मा० सम्मेतसिहर विहार
 इम इम मंडप बारणइ ए मा० दोइ दोइ मूरति सार
 हस्त सिद्धि सुहगुरु तणी ए मा० दिनि दिनि धरणविहार
 वाधइ वंध्याचल समु ए मा० महिमंडलि सिणिगार ॥२३॥
 विदिसइं दो मुख दीपताए मा० महीधर च्यारि विहार
 पहिलुं चंपागर तणु ए अजिय सीमंधरसामि
 बीजु महादे करेविअ तिहिं संति नेमिकुमार
 त्रीजइ संघ खंभाइतु ए मा० वेचइं वित्त अपार ॥२४॥
 थापि पासजिणेसरू ए मा० चउथइ तोल्हिइ साहि
 वीरजिणंद मंडाविउ ए मा० लीधु लछिनुं लाह
 तारणगढ गिरिनारवर मा० थंभण साचुर सामि
 जाणे ए अवतारिया ए मा० कि पंचतीरथ नामि ॥२५॥
 ए चिहुं पडिमा अट्टवर माण तेतीस अंगुल अंग
 इग इग मंडप बारणइ ए मा० कुलगिरिनीय परिसार
 छत्रू जिण देहरी तणा ए मा० दीसइं सोभ संभार
 जाणे केलि खडोखली ए मा० तिहुअणजण सुहकार ॥२६॥
 सोलोत्तरसु मूलजिण मा० मंडप वीस उदार
 अठसट्ठि अधिकां त्रिणिसइं ए मा० चउमुखि चउकी सार
 सिखरि सहस सात कलसा ए मा० पंनरसइं छत्रू थंभ
 पंचसइं चउसठि पूतली ए मा० सोहइं जिम देवरंभ ॥२७॥
 चउवीसासु तोरणां ए मा० कोरणीए अभिराम
 तिहुअणजण सोहामणीय मा० देखीय एहवुं ठाम

रायराणा मनि चींतवइं ए मा० ए किसुं देवनुं काम
 शास्त्र माहि इम बोलीइ ए मा० त्रिभुवनदीपक नाम ॥२८॥
 पाष(?छ)लि साल सोहामणु ए मा० कोसीसे सुविसाल
 जाणे महियलि मंडिउ ए मा० समोसरण चउसाल
 तिहिं ऊपरि गजसिंहला ए मा० सोहइं चिहुं दिसि पोलि
 तिहिं आगलि हिव चाहिए ए मा० पावडिया रांडलि ॥२९॥
 साठि चतुर्मुख सासताए मा० ते छइ देवहगम्मु
 तेहजा मलि एकसट्टिमु ए मा० धरणागर अतिरम्मु
 राणिगपुरि मंडावीउ ए मा० नित नित उच्छव रंग
 दानव मानव देवता ए मा० पूज रचइं नितु चंग ॥३०॥
 तवगच्छनायक युगपवर मा० सोमसुंदरसूरि सीस
 विशालमूरति पण्डित तणा ए मा० सेवित पइ निसिदीस
 इणपरि भगतइं वन्निउ ए मा० ए श्रीय धरणविहार
 भणतां गुणतां संपजइं ए मा० सासइ सुक्ख संभार
 सुणिसुंदरि ॥३१॥

इतिश्रीधरणविहारचतुर्मुखस्तवः । समाप्तं । शुभं भवतु ॥
 सं० लाखाभा० लीलादे पुत्री श्रा० चांपूठनार्थं ॥ लिखतं पूज्याराध्य पं०
 समयसुन्दरगणिशिष्य पं० चरणसुन्दरगणि शिष्य हंसविशालगणिना ॥

—X—

[नोंध : काव्य के अन्तिम पद्य में आनेवाली 'विशालमूरति पण्डित तणा
 ए, सेवित पइ निसिदीस' इस पङ्क्ति से यह रचना श्रीविशालमूर्ति के शिष्यने
 की हो ऐसा प्रतीत होता है । -शी]

‘पितर’ संकल्पना की जैन दृष्टि से समीक्षा

- डॉ. अनीता सुधीर बोथरा

प्रस्तावना :

वैदिक या ब्राह्मण परम्परा और श्रमण परम्परा-ये दोनों परम्पराएँ भारत में प्राचीन काल से समान्तर रूप में प्रवाहित, अलग अलग परम्पराएँ हैं - यह सत्य विद्वज्जगत् में प्रायः मान्य हुआ है। इन परम्पराओं की अलगता दिखानेवाले जो अनेक छोटे-बड़े तथ्य सामने उभरकर आते हैं, उसमें ‘पितर’ संकल्पना और उससे जुड़ी हुई श्राद्ध, तर्पण तथा पिण्ड ये संकल्पनाएँ भी आती हैं।

जैन समाज आरम्भ से संख्या में अल्प है। विविध कारणवश पूरे भारतभर में बड़े शहरों से लेकर छोटे गाँव या बस्तियों तक बिखरा हुआ है। अतएव हिन्दु समाज का दैनन्दिन सान्निध्य उसे प्राप्त हुआ है। धार्मिक और व्यावसायिक दोनों कारणों से सहिष्णु तथा शान्तताप्रेमी जैन समाज पर, हिन्दुओं की अनेक धार्मिक रूढ़ियों का तथा विधिविधानों का प्रभाव पडना बहुत ही स्वाभाविक बात है। इसी वजह से हिन्दु संस्कार, व्रत-वैकल्य, पूजा-अर्चा आदि कर्मकाण्डप्रधान विधि-विधान, जैनियों ने भी थोड़े संक्षिप्त रूप में तथा पंचपरमेष्ठी की महत्ता कायम रख के जैन धर्मानुकूल बनाए। हिन्दु पुराणों की तरह, जैन पुराणों की रचना करके विशिष्ट घटना, व्यक्ति से सम्बन्धित विविध व्रत तथा अनेक उद्यापन आदि भी प्रचलित हुए। तथापि ‘पितर’ संकल्पना सिद्धान्तों के बिलकुल ही विपरीत होने के कारण उन्होंने नहीं अपनायी।

‘पितर’ संकल्पना के उल्लेख प्रायः सभी श्रुति, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत तथा पूर्वमीमांसा दर्शन इ. ग्रन्थों में विपुल मात्रा में दिखायी देते हैं। इन संकल्पनाओं पर आधारित स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना भी हुई है। ब्राह्मण परम्परा के अनेकविध ग्रन्थों के पितरसम्बन्धी उल्लेखों कि सूचि कृपया ऑल इण्डिया ओरिएण्टल कॉन्फरन्स (AIOC), कुरुक्षेत्र, अधिवेशन ४४, जुलै २००८ में प्रस्तुत किया गया शोधपत्र।

परिशिष्ट में देखे। इससे 'पितर' संकल्पना की दृढमूलता तथा व्याप्ति दिखायी देती है।

(अ) कुछ प्रातिनिधिक ग्रन्थों में उल्लिखित पितर सम्बन्धी मान्यताएँ :

(१) ऋग्वेद :

ऋग्वेद में यम वैवस्वत को पितृसम्राट कहा है। यम पितरों का मुख्य है। अंगिरस इ. पितरों के कई गण हैं। यम का सम्बन्ध यज्ञ से जोड़ा गया है। अनेक प्रकार के पितर देवताओं के नाम दिये गये हैं। पुरातन पितरों को यम तथा वरुण का दर्शन करने की बिनती की है। 'पुण्यवान पितर स्वर्लोक में जाएँ तथा स्वर्लोक के पितर स्वस्थान में जाएँ' इस प्रकार की भावना व्यक्त की है। यज्ञफल देने में पितरों का भी सहभाग होता है। भक्तों की पूजा से पितर सन्तुष्ट होते हैं तथा अपराध से क्रुद्ध होते हैं। 'मृतदेह में नवीन जीव डालकर तू पितरों को सौपा दे', इस प्रकार की प्रार्थना अग्नि से की है। 'स्वच्छन्द' पितरों को पाचारण किया है।^१

(२) तैत्तिरीय ब्राह्मण :

तैत्तिरीय ब्राह्मण में पितर, पिण्डदान, पिण्डपितृयज्ञ, पितृप्रसाद, पितृलोक इ. के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। पितर देवात्मक और मनुष्यात्मक है। 'देवात्मक पितर' पितृलोक के स्वामी हैं। मरण के उपरांत पितृलोक का उपभोग लेने के लिए जो पितृलोक को प्राप्त होते हैं उनको 'मनुष्यात्मक पितर' कहते हैं। देवात्मक पितरों की तृप्ति के बाद ही मनुष्यात्मक पितरों को तृप्त करना चाहिए।^२

(३) मनुस्मृति :

मनुस्मृति के तीसरे अध्याय के आधार से निम्नलिखित तथ्य दृग्गोचर होते हैं - मनुस्मृति के काल में पितृतर्पण तथा श्राद्धविधि समाज के चारों वर्णों द्वारा किये जाते थे। सब लोगों से विधि करानेवाला समाज, ब्राह्मण पुरोहित समाज था। ऋग्वेद में पितरों को ध्यान में रखकर सामान्य रूप से किया हुआ आवाहन अब अपने अपने कुल के तीन मृत पुरुषों को

१. ऋग्वेद १०.१४; १०.१५; १०.१६

२. तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रपाठक ३, अनुवाद १०, पृ. ६५ से ६८

किए हुए आवाहन के रूप में दिखायी देता है। ब्राह्मणपितर, क्षत्रियपितर, वैश्यपितर तथा शूद्रपितर इस प्रकार की पितरों की चातुर्वर्णव्यवस्था की गयी है। पितृपूजा तथा श्राद्धविधि में विशिष्ट अन्नविषयक उल्लेख की मात्रा बहुत ही बढ़ गयी है जब कि ऋग्वेद में उसका उल्लेख भी नहीं है। ब्राह्मणभोजन द्वारा पितरों को तृप्त करना यह संकल्पना नये सिरे से उद्भूत की गयी है। पितरों की अक्षय तृप्ति कराने हेतु विविध प्रकार के मांस का आहार बहराने के उल्लेख हैं। दैनन्दिन, मासिक, त्रैमासिक तथा वार्षिक आदि श्राद्ध के अनेक प्रकार दिये हैं। पितृतर्पण करानेवाले पुरोहित का श्रेष्ठत्व बढ़ गया है। भोजन करते हुए ब्राह्मणों को किन किन प्राणियों से तथा लोगों से बचना है इसके नियम, उपनियम दिये हैं। शूद्रों को श्राद्ध भोजन के उच्छिष्ट का भी अधिकारी नहीं माना है। श्राद्ध विधि में पुत्र की प्रधानता होने के कारण पितरों की तृप्ति करानेवाले पुत्र की कामना की है।^३

(४) स्मृतिचन्द्रिका :

स्मृतिचन्द्रिका के 'श्राद्धकाण्ड' के अन्तर्गत श्राद्धमहिमा, श्राद्धभेद, श्राद्धाधिकारी, श्राद्धकाल, श्राद्धभोजनीयब्राह्मण, पैतृकार्चनविधि, पिण्डदानविधि इ. अनेक विषय विस्तार से वर्णन किये हैं।^४

(५) चतुर्वर्गचिन्तामणि :

चतुर्वर्गचिन्तामणि के प्रथम भाग के १ से ९ अध्याय में श्राद्धविषयक विचार विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किये हैं। श्राद्धविधि, श्राद्धमहात्म्य, श्राद्धक्रिया, श्राद्धतर्पण, पितृतृप्ति, पितृगण, पितरों के प्रकार, पिण्डदान, ब्राह्मणभोजन, श्राद्धपदार्थ इ. विषय चर्चित किये हैं। 'श्राद्ध' शब्द को 'योगरूढ' शब्द कहा है। श्राद्ध पर अनेक आक्षेप भी उपस्थित किये हैं और अपनी तरफसे उनका निराकरण करने का प्रयत्न भी किया है।^५

(६) मार्कण्डेयपुराण :

मार्कण्डेयपुराण में अध्याय २८ से ३० तथा ९२ से ९४ इन अध्यायों में पितृपूजा तथा श्राद्ध का विस्तृत वर्णन है। उसमें कहा है कि चारों वर्णों

३. मनुस्मृति अध्याय ३

४. स्मृतिचन्द्रिका श्राद्धकाण्ड (३)

५. चतुर्वर्गचिन्तामणि अध्याय १ से ९

के पितर अलग अलग हैं और उनके लिए बनाये जानेवाले अन्नपदार्थ भी अलग अलग हैं। यहाँ पितृगणों की संख्या ३१ कही गयी है। वृक्षसहित सभी योनियों में पितर जा सकते हैं इसका जिक्र किया गया है। 'रुचि' नामक ब्रह्मचारी और पितर इनका विस्तृत संवाद दिया है। इस संवाद में पितर, विरक्त स्वभाव के ब्रह्मचारी रुचि को विवाह और पुत्रोत्पत्ति का महत्त्व बताते हैं। पितृतर्पण की महत्ता पितरों के मुख से ही रुचि को बतलायी है। मनु के जन्म की कथा तथा स्वर्ग में किये गये पितरों का श्राद्ध भी इसमें अंकित है। मांसभक्षण का भी इसमें उल्लेख है।^९

(७) वायुपुराण :

वायुपुराण में पितरों का सम्बन्ध सोमरस से जोडा हुआ है। पितरों के विविध प्रकार दिये हैं। अग्निष्वात्त और बर्हिषद ये पितरों के दो प्रकार प्रायः सभी ग्रन्थों में अंकित हैं। इसके सिवा ७ पितृगणों के भी नाम है।^{१०}

(८) मत्स्यपुराण :

मत्स्यपुराण में पितरों के दिव्यरूप, दिव्यमाला, अलङ्कार तथा कामदेव समान कान्ति का उल्लेख है। यहाँ भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ऐसे चार प्रकार के पितर दिये गये हैं। 'धार्मिक पितर स्वर्ग से भी ऊपर के ज्योतिष्मत् नाम के स्वर्ग में बसते हैं' - ऐसा कथन किया है।^{११}

(९) कूर्मपुराण :

कूर्मपुराण में कहा है कि श्राद्ध के दिन पितृगणों का उस स्थान पर अवतरण होता है। वे वायुरूप में स्थित होते हैं। ब्राह्मणों के साथ भोजन करते हैं। भोजन के उपरांत परमगति को प्राप्त होते हैं। श्राद्धविधि करानेवाले ब्राह्मणों के बारे में यहाँ कुछ निकष दिये हैं। अगर विप्र दुष्ट है तो पितर पापभोजन करता है और अगर विप्र कलही है तो मलभोजन करता है।^{१२}

इस प्रकार कुछ प्रातिनिधिक ग्रन्थ चुनकर पितरविषयक विचारों का

६. मार्कण्डेयपुराण अध्याय २८ से ३० तथा अध्याय ९२ से ९४

७. वायुपुराण ३८.८, १६, १७, २२, २३, २७, ५९, ६१, ६२, ८५ से ८८

८. मत्स्यपुराण अध्याय १४, १५, १६

९. कूर्मपुराण द्वितीय खण्ड, अध्याय २१, २२

जो संक्षिप्त चित्रण प्रस्तुत किया है उससे मालूम पडता है कि ऋग्वेद में यमरूप पितर को सर्वाधिक महत्त्व है। उसका यज्ञ से सम्बन्ध जोडा है। स्मृति तथा पुराण ग्रन्थों में धीरे धीरे पितरों के साथ साथ ही श्राद्धविधि, पिण्ड तथा तर्पण का महत्त्व भी बढ गया। उसके अनन्तर स्मृतिसम्बन्धी स्वतंत्र ग्रन्थों में श्राद्ध तथा उसके उपप्रकारों की मानो बाढ सी आ गयी।

(ब) पितरसम्बन्धी मान्यताओं में सुसूत्रता का अभाव :

ब्राह्मण परम्परा के विविध मूलगामी ग्रन्थों में तथा स्वतन्त्र ग्रन्थों में पितर तथा पितृलोक सम्बन्धी विविध मत व्यक्त किये हैं। विविध आशंकाएँ उपस्थित की हैं। अतार्किक एवं असम्भव लगनेवाले विवेचनों की उपपत्ति लगाने का भी प्रयास किया गया है। इन सब में एक समान धागा यही है कि किसी भी दो ग्रन्थों में साम्य के बजाय मतभिन्नता ही अधिक है। निम्नलिखित वाक्यों पर अगर नजर डाली जाएँ तो इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

- ◆ पुण्यवान पितर स्वर्लोक में जाएँ और स्वर्लोक के पितर स्वस्थान में जाएँ।^{१०} इससे यह सूचित होता है कि कुछ पितर ही स्वर्लोक में जाते हैं और उसमें कुछ पितर स्वतन्त्र पितृलोक में जाते हैं।
- ◆ हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! 'स्वधापूर्वक' अर्पित मृतदेह में नया जीवन डालकर तुम पितरों को दे दो।^{११} दग्ध मृतदेह को पुनः जीवित बनाकर अग्निदेव पितरों को अर्पित करता है।
- ◆ अथर्ववेद में देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि इन पाँच समाजों का निर्देश है।^{१२} तैत्तिरीय संहिता के एक मन्त्र से यह सूचित होता है कि देव, मनुष्य, पितर, असुर, राक्षस और पिशाच यह ६ भिन्न योनियाँ हैं।^{१३} पितरविषयक वैदिक, स्मार्त और पौराणिक साहित्य का आलोडन करके श्री.ना. गो. चापेकरजी ने यह सिद्धान्त सामने रखा है कि देव और मनुष्य के समान पितर नाम का एक समाज था।^{१४} लेकिन

१०. ऋग्वेद १०.१५.१

१३. तैत्तिरीय संहिता २.४

११. ऋग्वेद १०.१६.५

१४. भारतीय संस्कृतिकोश पृ. ५६५

१२. ऋग्वेद १०.१६.५

विविध विसंगत उल्लेखों के कारण हम सुनिश्चित रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि यह इहलोक में होनेवाला एक समाज है या अंतरिक्ष में स्थित पितृलोकों में निवास करनेवाली एक योनि है।

- ◆ तैत्तिरीय ब्राह्मण में देवों के, मनुष्यों के और पितरों के आयुर्मान के बारे में विवेचन दिया है। उसके आधार से पं. गणेशशास्त्री भिलवडीकरजी इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि पितृलोक इस भूतलपर होने की तनिक भी सम्भावना नहीं है। इतना ही नहीं तो पितृलोक हमारे सूर्यमाला में भी होने की संभावना भी नहीं है। अन्य सूर्यमाला में पितृलोक हो सकता है।^{१५} पितृलोक का एक निश्चित स्थान निर्दिष्ट न होने के कारण अभ्यासकों में भी मतभिन्नता दिखायी देती है।
- ◆ पितरों का वर्गीकरण अन्यान्य प्रकार से दिया हुआ है। बृहदारण्यक में अयोनिःसम्भव पितरों का उल्लेख पाया जाता है।^{१६} बर्हिषद, अग्निष्वात्त आदि नामनिर्दिष्ट पितर हैं। इसके अलावा सोमप, हविर्भुज, आज्यप और सुकालि इनका चार वर्णों के पितरों के रूप में निर्देश है। इन चारों के पिता भृगु, अंगिरस, पुलस्त्य और वसिष्ठ बताएँ हैं। अत्रिपुत्र, बर्हिषद दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, सुपर्ण, राक्षस और कित्रर इनके पितर हैं।^{१७} तैत्तिरीय संहिता में उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ ऐसे तीन प्रकार के पितर बताएँ हैं।^{१८} तैत्तिरीय ब्राह्मण^{१९} में तथा वायुपुराण^{२०} में देवपितर और मनुष्यपितर ऐसे दो प्रकार भी निर्दिष्ट किये हैं। विविध ग्रन्थों में आये पितरों के वर्णनों के आधार से विद्वानों ने पितरों के नित्य, नैमित्तिक और मर्त्य ऐसे तीन भेद किये हैं।^{२१} इस विवेचन से यह प्रतीत होता है कि पितरों के प्रकारों का विवेचन किसी एक सूत्र के आधार से नहीं किया है।

१५. पितर व पितृलोक पृ. २, ३ १६. पितर व पितृलोक पृ. १३

१७. मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक ९६, ९७, ९८

१८. तैत्तिरीय संहिता २.६.१२

१९. तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रपाठक ३, अनुवाद १०, पृ. ६५ ते ६८

२०. वायुपुराण ३८.८६

२१. पितर व पितृलोक पृ. १२

- ◆ बृहदारण्यक में बताया है कि पितृलोक आनन्दमय है ।^{२२} मार्कण्डेयपुराण में वर्णन किया है कि पितर देवलोक में, तिर्यग्योनि में, मनुष्यों में तथा भूतवर्गों में भी होते हैं । कोई पुण्यवान तो कोई पुण्यहीन होते हैं । वे सब क्षुधा के कारण कृश तथा तृष्णा से व्याकुल होते हैं । कर्मनिष्ठ पुरुष पिण्डोदक दान से इन सबको तृप्त करें ।^{२३} एक तरफ पितृलोक के आनन्दमयता की बात करना और दूसरी तरफ पिण्डोदक द्वारा उनके तृप्ति की बात करना इसमें कतई तालमेल नहीं है ।
- ◆ ब्राह्मणों के लिए नित्य पंचमहायज्ञों का विधान है । उनमें एक पितृयज्ञ भी है ।^{२४} इसका मतलब यह हुआ कि ब्राह्मणों के पितरों की नित्य तृप्ति का विधान है । क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र पितरों के बारे में इस प्रकार का विधान नहीं है । इस प्रकार की तथा कई अन्य प्रकार की ब्राह्मण पक्षपातिता इन ग्रन्थों में स्पष्टतः दिखायी देती है ।
- ◆ वेदकाल में यह माना जाता था कि मृतात्मा प्रेतदहन के बाद तत्काल पितरपद प्राप्त करता है । गृह्यसूत्रों के काल में इस कल्पना में परिवर्तन आये । उसमें कहा गया है कि देह छोड़ने के बाद मृतात्मा प्रेतयोनि में एक साल तक रहता है । इस अवस्था में अनन्त यातनाओं का भागी होता है । उसको पीडामुक्त करने के लिए एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण इ. श्राद्धों का विधान है । पौराणिक काल में एक अन्य संकल्पना सामने आयी । उनके अनुसार मृतात्मा शरीरदहन के बाद 'अतिवाहिक' नाम का सूक्ष्म शरीर धारण करता है । इस अवस्था में उसको क्षुधा, तृष्णा आदि क्लेश होते हैं । पिण्डदान आदि के बाद अतिवाहिक अवस्था से मुक्त होकर उसे 'प्रेतशरीर' प्राप्त होता है । उसके बाद एकोद्दिष्ट आदि करने से प्रेतशरीर नष्ट होकर पितरपद को प्राप्त होता है ।^{२५} मृतात्मा पितर बनने की प्रक्रिया के बारे में वैदिक परम्परा में इतने सारे बदलाव दिखायी देते हैं ।
- ◆ मत्स्यपुराण में पितरों के वायुरूप होने का उल्लेख पाया जाता है ।^{२६}

२२. पितर व पितृलोक पृ. १३

२५. भारतीय संस्कृतिकोश पृ. ५६७

२३. मार्कण्डेयपुराण २३.४९ ते ५२

२६. मत्स्यपुराण १७.१८

२४. तैत्तिरीय संहिता २.४; मनुस्मृति ३.८२

मार्कण्डेयपुराण में प्रार्थना के अनन्तर पितरों का तेज बाहर निकलना और उनके पुष्प, गन्ध, अनुलेपन से भूषित होने का निर्देश किया है।^{२७} पण्डित भिलवडीकरजी ने कहा है कि पितर मुख्यतः अमूर्त और वायुरूप होते हैं और तर्पण तथा श्राद्ध के समय मूर्तिमान बनकर आते हैं।^{२८}

(क) 'पितर' संकल्पना की जैन दृष्टि से समीक्षा :

ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक तथा अतिप्राचीन काल से आजतक पूरे भारत वर्ष में पितर, तर्पण, पिण्ड तथा श्राद्ध ये कल्पनाएँ दृढमूल दिखायी देती हैं। जैन परम्परा में प्राचीन काल से लेकर आजतक अपने आचार-व्यवहार में इन संकल्पनाओं को अवसर नहीं दिया है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं।

१. पितर संकल्पना का सुव्यवस्थित न होना।
 २. जैन दार्शनिक पृष्ठभूमि इस व्यवहार के लिए अनुकूल न होना।
- इन दोनों कारणों का विशेष ऊहापोह यहाँ किया है।

(१) सुसूत्रता का अभाव :

इसके पूर्व किये हुए विस्तृत विवेचन में इस मुद्दे पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है। अतः यहाँ पुनरुक्ति नहीं कर रहे हैं।

(२) यज्ञों की प्रधानता :

ऋग्वेद में पितरों का सम्बन्ध यज्ञ से जोड़ा हुआ है। मनुस्मृति में तो पंचमहायज्ञों में पितृयज्ञ का स्पष्टतः उल्लेख है। जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं ने यज्ञीय परम्परा का जमकर विरोध किया है। 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' के ८ वे शतक में और 'स्थानांग' के ४ थे स्थान में नरकगति के बन्ध के चार कारण दिये हैं।

(१) महाआरम्भ (अमर्यादित हिंसा) करनेसे (२) महापरिग्रह

२७. मार्कण्डेयपुराण अध्याय ९४, श्लोक १४, १५

२८. पितर व पितृलोक पृ. १३

(अमर्यादित संग्रह) करने से, (३) पंचेन्द्रिय जीवों का वध करने से, (४) मांसभक्षण से ।^{२९}

यहाँ यज्ञनिन्दा स्पष्ट रूप में नहीं की है । लेकिन 'धर्मोपदेशमाला-विवरण' में इन चार कारणों का सम्बन्ध स्पष्टतः यज्ञीय कृति से जोड़कर उसकी निन्दा की है ।^{३०}

(३) वेदाध्ययन, वेदों का तारकत्व तथा ब्राह्मणभोजन का महत्त्व :

उत्तराध्ययन के १४ वे इषुकारीय अध्ययन में एक पुरोहित के दो पुत्रों का संवाद प्रस्तुत किया है । पुरोहित अपने विरक्त पुत्रों से कहता है-

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिड्डप्प गिहंसि जाया ! ।

भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥^{३१}

इस गाथा में वेदाध्ययन का महत्त्व, ब्राह्मणभोजन, पुत्रोत्पत्ति आदि गृहस्थसम्बन्धी क्रियाओं की अनिवार्यता पुरोहित के वचनद्वारा दर्शायी है ।

पुरोहितपुत्र जवाब देते हैं कि-

वेया अहीया न हवंति ताणं, भुत्ता दिया निति तमं तमेण ।

जाया य पुत्ता न हवंति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ? ॥^{३२}

इस गाथा के द्वारा वेदों का तारणस्वरूप न होना, भोजन दिये हुए ब्राह्मणों का अधिकाधिक अज्ञानद्वारा यजमान को गुमराह करना, गृहस्थाश्रम की अनिवार्यता न होना इ. बातें स्पष्ट रूप से कही हैं ।

ब्राह्मणों को दिया हुआ भोजन पितरों तक पहुँचकर वे तृप्त हो जाते हैं इस मान्यता में जो अतार्किकता और असम्भवनीयता है उसका निर्देश इस संवाद में स्पष्टतः दिखायी देता है । इसलिए यद्यपि यहाँ पितरों का स्पष्टतः निर्देश नहीं है तथापि उस संकल्पना का निषेध ही यहाँ अन्तर्भूत या सूचित है ।

२९. व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) ८.४२५; स्थानांग ४.६२८

३०. धर्मोपदेशमालाविवरण पृ. ३०-३१

३१. उत्तराध्ययन १४.९

३२. उत्तराध्ययन १४.१२

(४) भोजनसम्बन्धी मान्यता :

ब्राह्मण परम्परा के विविध व्रत, वैकल्य तथा उद्यापन और विशेषतः श्राद्धविधि में भोजन की प्रचुरता होती है। श्राद्ध के दिन पितरों को अर्पित किया हुआ भोजन किस प्रकार का होना चाहिए, किस प्रकार का नहीं होना चाहिए इसकी विस्तारपूर्वक चर्चा स्मृति तथा पुराण ग्रन्थों में पायी जाती है। पितरों को श्राद्धान्न अर्पित करके उर्वरित अन्न तथा ब्राह्मणों के उच्छिष्ट अन्न का उल्लेख भी पाया जाता है।

जैन परम्परा में जो भी धार्मिक विधिविधान या व्रत है उसमें प्रायः जप, तप, स्वाध्याय, सामायिक तथा उपवास आदि की प्रधानता होती है।^{३३} यद्यपि आधुनिक काल में जैनियों में भी व्रत के उद्यापन के दिन भोजन आदि बनाएँ जाते हैं तथापि उनको प्राचीन ग्रन्थाधार नहीं है। ये प्रथाएँ स्पष्टतः ब्राह्मण परम्परा के सम्पर्क से प्रचलित हुई है।

गृहस्थों ने खुद के लिए भोजन बनाकर ईश्वर को अर्पण करना तथा प्रसाद के रूप में उसका ग्रहण करना - इस प्रथा का प्रचलन जैन परम्परा में नहीं है। अतः मृत पितरों को भोजन अर्पित करना तथा उसका प्रसादस्वरूप ग्रहण करना भी उनको मान्य नहीं है।

(५) 'ब्राह्मण' शब्द का विशेष अर्थ:

ब्राह्मण परम्परा में ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक तथा आज भी पितृतर्पण तथा श्राद्धविधि ब्राह्मणों के द्वारा ही मन्त्रपूर्वक किये जाते हैं। धर्मसम्बन्धी कार्यों में ब्राह्मण, पुरोहितों का मध्यस्थ होना, जैन तथा बौद्ध दोनों श्रमण परम्पराओं को कतई मान्य नहीं था। श्रमण परम्परा में यह बार-बार निर्दिष्ट किया है कि 'ब्राह्मणत्व' जाति के आधार से नहीं पाया जाता।^{३४} उत्तराध्ययन में 'उसे हम ब्राह्मण कहते हैं' (तं वयं ब्रूम माहणं) इस प्रकार के उल्लेख करके सच्चे ब्राह्मणों के लक्षण दिये हैं। क्रोधविजयी, अनासक्त, अलोलुप, अनगार, अकिंचन तथा ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले व्यक्ति को

३३. दशवैकालिक ८.६१, ६२

३४. उत्तराध्ययन २५. ३३

ही उत्तराध्ययन में ब्राह्मण कहा है ।^{३५}

ब्राह्मण शब्द का विशिष्ट जातिवाचक अर्थ बदलने से यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत मन्त्रोच्चारणपूर्वक पितृश्राद्ध आदि विधि का जैनियों में प्रचलन न होना बिलकुल ही स्वाभाविक है ।

(६) जातिप्रधान वर्णव्यवस्था :

मनुस्मृति तथा मार्कण्डेयपुराण में पितरों की जातिप्रधान वर्णव्यवस्था का जिक्र किया है ।^{३६} ब्राह्मणग्रन्थों में निहित जातिप्रधान वर्णव्यवस्था के बदले जैन परम्पराने कर्मप्रधान वर्णव्यवस्था को महत्त्व दिया है ।^{३७} इससे भी बढ़कर विश्व के समूचे जीवों को आध्यात्मिक प्रगति के अधिकारी मानकर एक दृष्टि से अनोखी समानता प्रदान की है ।^{३८}

जैन परम्परा के अनुसार मृत जीव अपने कर्मानुसार नरक, तिर्यच, मनुष्य तथा देव आदि गतियों में जाकर संसारभ्रमण करता है ।^{३९} अतः जातिप्रधान या जातिविहीन किसी भी वर्णव्यवस्था में उन जीवों को नहीं ढाला जाता ।

(७) 'पिण्ड' शब्द का विशिष्टार्थबोधक प्रयोग :

'पिण्ड' शब्द का मूलगामी अर्थ 'गोलक' है । लोकरूढि में यह शब्द किसी भी अन्नपदार्थ के और मुख्यतः चावल के गोलक के लिए प्रयुक्त किया जाता है । ब्राह्मण परम्परा में पितरों को श्राद्ध के समय अर्पण किये गये चावल के गोलक के लिए ही वह मुख्यतः प्रयुक्त हुआ है । चतुर्वर्गचिन्तामणि ग्रन्थ में इस शब्द को 'योगरूढ' ही माना है ।^{४०} ब्राह्मण परम्परा में पिण्ड शब्द के साथ पितर संकल्पना, श्राद्ध संकल्पना निकटता से जुड़ी हुई है ।

३५. उत्तराध्ययन २५. १९ से ३२

३६. मनुस्मृति ३.९६ से ९९; मार्कण्डेयपुराण अध्याय ९३.२० से २३

३७. उत्तराध्ययन २५.३३

३८. आचारांग १.२.३.६५; १.४.२.२३; उत्तराध्ययन १९.२६; दशवैकालिक ६.१०; मूलाचार २.४२

३९. स्थानांग ४.२८५

४०. चतुर्वर्गचिन्तामणि अध्याय ४, पृ. २७०

‘पिण्ड’ शब्द से जुड़े हुए ब्राह्मण परम्परा के सब पितरसम्बन्धी अर्थवलय जैन परम्पराने दूर किये हैं। साधु प्रायोग्य प्राशुक आहार को ही ‘पिण्ड’ कहा है। जैन साहित्य के प्राचीनतम अर्धमागधी ग्रन्थों में, पिण्ड शब्द का ‘साधुप्रायोग्य भोजन’, इस अर्थ में प्रयोग दिखायी देता है। आचारांग और दशवैकालिक दोनों ग्रन्थों में ‘पिण्डैषणा’ नामक स्वतन्त्र अध्ययनों की योजना की गयी है। उनमें साधुप्रायोग्य आहार की विशेष चिकित्सा की गयी है।^{४१} आ. भद्रबाहु द्वारा विरचित ‘पिण्डनिर्युक्ति’ ग्रन्थ में भी इसी अर्थ में पिण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है।

साधु के उद्देश्य से न बनाया हुआ, शुद्ध और प्रासुक आहार साधु पाणिपात्र में अथवा एक ही भिक्षापात्र में इकट्ठा ही ग्रहण करते हैं। अतः विविध प्रकारके भोजन का मानों पिण्ड ही बन जाता है। रसास्वाद की दृष्टि से परे रहकर ही, निरासक्त दृष्टि से साधु पिण्ड का आहार करते हैं।

‘पिण्ड’ शब्द के इस विशेष अर्थ में किये हुए प्रयोग से यह साफ दिखायी देता है कि पितरों के उद्देश्य से बने हुए पिण्ड तथा मूलतः पितर संकल्पना ही जैनियों को मान्य नहीं है।

(८) ‘श्रद्धा’ तथा ‘श्राद्ध’ शब्द के अर्थ :

चतुर्वर्गचिन्तामणि ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में, स्मृतिचन्द्रिका, मनुस्मृति, बौद्धायनसूत्र तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण इन ग्रन्थों में श्राद्ध शब्द की व्युत्पत्ति विस्तार से दी है। वहाँ स्पष्टतः बताया है कि जो भी कार्य श्रद्धापूर्वक किया जाता है वह ‘श्राद्ध’ है। उसके अनन्तर तिल, दर्भ, मंत्र, हविर्भाग, पिण्डदान आदि श्रद्धापूर्वक देने का विधान है।

जैन परम्परा ने श्रद्धा और श्राद्ध दोनों शब्दों का प्रयोग विपुल मात्रा में किया है। श्रद्धा में निहित मूलगामी अर्थ को ही प्राधान्य दिया है। उदक, तिल, दर्भ आदि पदार्थ देने के विधि को कहीं भी श्राद्ध नहीं कहा है। जैन परम्परा में जिनप्रतिपादित तत्त्व पर श्रद्धा रखनेवालो को ‘सद्धी’ याने ‘श्रद्धावान’ कहा है। यद्यपि यह विशेषण साधु और गृहस्थ दोनों के लिए

४१. आचारांग २.१.१ से ११; दशवैकालिक अध्याय ५, उद्देशक १ और २

उचित है तथापि 'सङ्गी' शब्द का प्रयोग प्रमुखता से श्रावक, उपासक या गृहस्थ के लिए ही हुआ है।^{४२} 'श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र' में श्रावक के द्वारा नित्य आचरित अनुष्ठानों का ही विवेचन है।

ब्राह्मण परम्परा में प्रचलित शब्दों को स्वीकार करके उनको नये अर्थ प्रदान करने की प्रथा जैन परम्परा में काफी मात्रा में दिखायी देती है।

(९) मृत जीवों का विविध गतियों में गमन :

मार्कण्डेयपुराण में स्पष्टतः कहा है कि मृत मनुष्य देवलोक में, तिर्यग्योनि में, मनुष्यगति में तथा अन्य भूतवर्ग में भी जाते हैं।^{४३} 'मरा हुआ प्रत्येक जीव पहले पितृलोक में ही जाता है', इस प्रकार का निःसन्दिग्ध कथन ब्राह्मण परम्परा के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है। इसके सिवाय मनुष्येतर जीव मृत्यु के उपरान्त पितृलोक में जाते हैं या नहीं इसका भी निर्देश ब्राह्मण ग्रन्थों में नहीं है।

जैन परम्परा के अनुसार गतियाँ चार हैं।^{४४} इसके अतिरिक्त पितृगति नाम की अलग गति या पितृलोक नाम का अलग लोक नहीं बताया है। जैनियों के कर्मसिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव उसके कर्म के अनुसार उचित गति प्राप्त करता है।^{४५} पितरों के कुछ कुछ उल्लेखों से यह सम्भ्रम उत्पन्न होता है कि पितृलोक को एक प्रकार का देवलोक क्यों नहीं माना जाय ?

जैन परम्परा में देवों के अनेक प्रकार, उपप्रकार तथा अलग अलग निवासस्थान निर्दिष्ट हैं।^{४६} जैसे कि मनुस्मृति में निर्दिष्ट है।^{४७} प्रायः उसी प्रकार जैन शास्त्र में भी किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये आठ व्यन्तरनिकाय माने गये हैं।^{४८} तथा ज्योतिष्क देवों का भी निर्देश है।^{४९} पितृगतिप्राप्त कुछ पुण्यवान पितरों को अगर विशिष्ट प्रकार

४२. आचारांग १.३.८०; १.५.९६ सूत्रकृतांग १.१.६०; २.१.१५

४३. मार्कण्डेयपुराण २३.४९ से ५२

४४. स्थानांग ४.२८५

४७. मनुस्मृति अध्याय ३.९६

४५. तत्त्वार्थसूत्र ६.१६ से २०

४८. तत्त्वार्थ ४.१२

४६. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ४

४९. तत्त्वार्थ ४.१३

के देवगति के जीव माना जाय तो भी विविध तार्किक शंकाएँ उपस्थित होती हैं। हर एक प्रकार के देवों की गति, स्थिति, आयुर्मान, भोग इ. जैन शास्त्र के अनुसार निर्धारित है। उन देवों को मानवद्वारा तर्पित करके उनको मुक्ति दिलाना, सन्तुष्ट कराना या उनको क्रोधित करना, जैन शास्त्र के अनुसार सम्भव नहीं है।

जैन शास्त्र के अनुसार देव इ. चारों गतियों के जीव के सुख-दुःख उनके खुद के द्वारा किये हुए कर्मों के ही आधीन हैं न कि उनके पुत्र के द्वारा किये गये श्राद्धादि विधि के आधीन है।

(१०) 'उदक' का अत्यधिक महत्त्व :

पितृतर्पण, श्राद्ध, पिण्डदान आदि सब विधियों में ब्राह्मण परम्परा में उदक का महत्त्व अधोरेखित किया गया है। जलांजलि, तिलांजलि आदि शब्दप्रयोगों में भी जल की प्रधानता है।

जैन परम्परा ने इसी वजह से ब्राह्मणधर्म को 'शौचधर्म' कहा है।^{५०} उदक के सम्बन्ध में जैन धारणा इसके बिलकुल विपरीत है। दृश्य जल सूक्ष्म अप्कायिक जीवों का समूह होने के कारण जल का प्रयोग न करना तथा कम से कम करना जैन परम्परा को अपेक्षित है। साधु के व्रतों में तो 'अस्नान' मूलगुण ही है।^{५१} स्नान से शुद्धि, तीर्थस्थान से मुक्ति आदि संकल्पनाओं का जैन ग्रन्थों में किंचित उपहासपूर्वक ही उल्लेख पाया जाता है।^{५२}

स्पष्ट है कि जलांजलि आदि से पितरों को तृप्त करना जैन परम्परा को मान्य नहीं है।

(११) 'यम' का आद्य पितरत्त्व :

प्रधानता से ऋग्वेद में^{५३} तथा अन्य ग्रन्थों में भी 'यम' को मृत्यु की देवता, पहला मर्त्य मानव तथा आद्य पितर इस रूप में प्रस्तुत किया है।

५०. ज्ञाताधर्मकथा १.८.११३

५१. दशवैकालिक ३.२; मूलाचार १.३

५२. सूत्रकृतांग १.७.१३ से १७; महापुराण ७.८.१२, १३

५३. ऋग्वेद १०.१४.१

जैन शास्त्र में मृत्यु नामक किसी देवता का निर्देश नहीं है। मृत्यु सिर्फ एक घटना है। हरेक जीव आयुष्कर्म क्षीण होने के बाद अधिक से अधिक तीन समय में (सूक्ष्म काल) अपने कर्म के अनुसार दूसरी गति प्राप्त करता है। यमराज, यमलोक, उसका भीषण स्वरूप, उसके पाश, भैंसा आदि किसी भी पौराणिक वर्णन को जैन दर्शन में आधार नहीं है।

आद्य पितर यम को ही नकार कर जैनियों ने पूरी पितर संकल्पना को ही नकारा है।

(१२) मांसभक्षण से पितरतृप्ति :

मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में पितरों को विविध प्रकार के मांसखण्ड अर्पण करने से उनकी दो महिनों से लेकर अक्षय तृप्ति होने के निर्देश विस्तारपूर्वक दिये हैं।

तिलैर्व्रीहियवैमाषैराद्धिर्मूलफलेन वा । दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम् । द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन तु १^{५४} इसी प्रकार का वर्णन मार्कण्डेयपुराण में भी है १^{५५}

पृथ्वीकायिक, जलकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के वध के प्रति संवेदनशील होनेवाले अहिंसाप्रधान जैन परम्परा ने, पितरों को मांसखण्ड खिलाने के इस विधि का तीव्र निषेध किया है। आ. पुष्पदन्त 'महापुराण' में कहते हैं कि-

गाइ चउप्पय तणयरि जेही । सूयरि हरिणि वि रोहिणि तेही ।

हा हा बंभणेण माराविय । रायहु रायवित्ति दरिसाविय ।

पियरपक्खु पच्चक्खु णिरिक्खइ । मंसखंडु दियपंडिय भक्खइ १^{५६}

खुद की मांसलोलुपता के कारण ब्राह्मणों ने धार्मिक विधियों में मांसभक्षण को जो स्थान दिया उसका धिक्कार जैन आचार्यों ने किया है। आधुनिक समय में श्राद्धविधि में मांसखण्ड से पितरों का तर्पण करने की

५४. मनुस्मृति अध्याय ३.६७ से ७२

५५. मार्कण्डेयपुराण अध्याय २९.२ से ८

५६. महापुराण ७.८.९ से ११

विधि प्रचलन से दूर हो गयी है। इसे हम अहिंसाप्रधान जैन धर्म का प्रभाव ही कह सकते हैं।

(१३) पितरसम्बन्धी स्पष्ट प्रतिक्रिया :

तेरहवीं शताब्दी में 'विधिमार्गप्रपा' नामक ग्रन्थ में जिनप्रभसूरि ने कहा है कि-

परतित्थे तव-न्हाण-होमाइ धम्मत्थं न कायव्वं । --- पिण्डपाडणं, थावरे पूया, --- माहे घयकंबलदाणं तिलदब्भदाणेण जलंजली, ---सवत्ति-पियरपडिमाओ, ---वायस-बिरालाईं पिण्डदाणं ---एमाई मिच्छत्तठाणां परिहरियव्वाइं ॥^{५७}

इससे यह स्पष्ट होता है कि संभवतः १३, १४ वीं शताब्दी तक ब्राह्मण परम्परा के प्रभाव से कुछ जैन लोगों में श्राद्ध, पिण्ड आदि प्रथा का प्रचलन हुआ होगा। आचार्य ने इसी वजह से ब्राह्मण परम्परा के पितर, पिण्डदान, तर्पण, श्राद्ध इ. विधिविधानों का तीव्र निषेध स्पष्ट शब्दों में किया है।

उपसंहार:

पितर, श्राद्ध एवं पिण्ड इन धारणाओं का विचार, ब्राह्मण तथा जैन परम्परा की दृष्टि से इस शोधलेख में किया है। ब्राह्मण परम्परा में अत्यधिक प्रचलित 'पितर संकल्पना की जैन दृष्टि से समीक्षा' की है। उसका दार्शनिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में अवलोकन किया है। 'आदिम मानवसमाज से लेकर आधुनिक समाज तक दृढमूल इन संकल्पनाओं का वैश्वीकरण जैन परम्परा में किस प्रकार हुआ है?' इस तथ्य की ओर विचारवन्तों का ध्यान आकृष्ट करना, इस उपसंहार का हेतु है।

जैन दार्शनिक धारणा के अनुसार समूचे विश्व में अनन्त जीव अनादि काल से इस चतुर्गतिसंसार में लगातार भ्रमण कर रहे हैं। दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र की आराधना के द्वारा कई जीव संसरण से मुक्त होकर सिद्धशिला पर विराजमान हैं।

संसार की ओर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पाँच पहलुओं से देखकर जैन दार्शनिकों ने अपने विचार अंकित किये हैं। 'द्रव्य' की दृष्टि से प्रत्येक जीव ने सब अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं को अनन्त बार भोगकर छोड़ दिया है। 'क्षेत्र' की दृष्टि से लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। प्रत्येक जीव के शरीर की अवगाहना असंख्यात प्रदेशप्रमाण है। असंख्यात बार एक जीव जन्म लेकर मरा है। 'काल' की दृष्टि से, एक जीव ने अनन्त काल परिवर्तन किया है। 'भव' की दृष्टि से चतुर्गति के सब भव पूर्ण करने को जो अनन्त काल व्यतीत हुआ उसको एक भवपरिवर्तन कहते हैं। ऐसे अनन्तभवपरिवर्तन इस जीव ने किये हैं। 'भाव' की दृष्टि से एक जीव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन परिणामों के वश होकर भावसंसारपरिवर्तन अनन्तकाल से करता आ रहा है। इस अतिव्यापक दृष्टि से देखे तो हर एक जीव अनन्त बार एकदूसरे के माता-पिता तथा सन्तान भी बना है।

मनुष्यगति का जीव जैन दार्शनिक मान्यता के अनुसार अगले भव में देव, मनुष्य, नारकी या तिर्यच किसी भी रूप में अपने कर्मानुसार जन्म ले सकता है। इस स्थिति में दुनिया के किस जीव को अपना 'पितर' मानकर श्राद्ध, तर्पण तथा पिण्ड प्रदान करें ?

एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के सम्पर्क में आकर एक जीव ने उनको सुख-दुख आदि दिये हैं। इन सभी ज्ञात-अज्ञात जीवों के प्रति संवेदनशील रहना, संयम तथा अप्रमत्तता से व्यवहार करना, इनके प्रति किये हुए दुश्चरित की क्षमा माँगना और अन्यो के प्रति क्षमाभाव धारण करना- ये सब बातें श्रद्धावान तथा विवेकी मनुष्य के लिए आवश्यक है। सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, दुष्कृतगर्हा, सुकृतानुमोदना, क्षमापना, आलोचना इन कृतियों के द्वारा साधु और श्रावक के दैनन्दिन आचार में उनका समावेश किया गया है।

ब्राह्मण परम्परा में एक व्यक्ति अपने वर्तमान जन्म के तीन पितरों का स्मरण करके श्राद्ध, तर्पण आदि क्रियाएँ करता है। जैन परम्परा ने पितरों के बारे में अपनी दृष्टि वर्तमान जीवन तक ही सीमित नहीं रखी है और

रख भी नहीं सकते । क्योंकि दार्शनिक मान्यता के अनुसार उनका जन्म, गति, स्थान आदि हमें मालूम नहीं है । 'पितर' तथा 'श्राद्ध' संकल्पना अपने वैयक्तिक स्तरपर सीमित न करके वैश्विक स्तर तक उसका उन्नयन करके जैन परम्परा ने एक अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया है । दृढ दार्शनिक पृष्ठभूमि का आधार देकर विसंवादिता तथा अतार्किकता भी दूर की है ।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूचि

१. आचारांग (आयार) : अंगसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१
२. उत्तराध्ययन (उत्तरज्ज्ञयण) : सं. मुनि पुण्यविजय, महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई, १९७७
३. ऋग्वेद : सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्रकोश मण्डळ, पुणे, १९६९
४. कूर्मपुराण : २ खण्ड, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, १९७०
५. चतुर्वर्गचिन्तामणि : हेमाद्रिसूरि, सं. रामनाथ दीक्षित, रामस्वामी अय्यर फॉन्डेशन, मद्रास, १९८५
६. ज्ञाताधर्मकथा (नायाधम्मकहा) : अंगसुत्ताणि ३, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१
७. तर्पण : ना.गो. चापेकर, पुणे, शके १८७०
८. तत्त्वार्थसूत्र : उमास्वामी, पं. सुखलालजी संघवी, वाराणसी, १९८५
९. तैत्तिरीय ब्राह्मण : गणेश दीक्षित बापट, सं. पु.हिल्लेकर, कानपुर, शके १९१८
१०. दशवैकालिक (दसवेयालिय) : आ. तुलसी, सं. मुनि नथमल, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१
११. द्वादशानुप्रेक्षा (बारसाणुपेक्खा) : आ. कुन्दकुन्दाचार्यविरचित, सं. सुमतिबाई शहा, सोलापूर, १९८९
१२. धर्मोपदेशमालाविवरण : जयसिंहसूरि, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, सं. जिनविजय मुनि, मुम्बई, १९४९
१३. पितर व पितृलोक : पं. गणेशशास्त्री भिलवडीकर, भारतीय-वाङ्मय-

माला, १९५७

१४. मत्स्यपुराण : डॉ. श्रद्धा शुक्ला, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, २००४
१५. मनुस्मृति : विष्णु वामन बापट, आर. टी. गोडबोले, पुणे, १९१८
१६. महापुराण : पुष्पदन्त, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, हीरालाल जैन, पी. एल्. वैद्य, १९३७
१७. मार्कण्डेयपुराण : द्वैपायनव्यासप्रणीत, काशीनाथ वामन लेले, श्रीकृष्ण मुद्रणालय
१८. मूलाचार : आ. वट्टेकर, सं. कैलाशचन्द्रशास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९८४
१९. वायुपुराण : १ खण्ड, श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, १९६७
२०. विधिमार्गप्रपा : जिनप्रभसूरि, सं. जिनविजय मुनि, जव्हेरी मूलचन्द हीराचन्द भगत, मुम्बई, १९४१
२१. व्याख्याप्रज्ञप्ति (विवाहपण्णत्ति) (भगवई) : अंगसुत्ताणि २, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१
२२. सूत्रकृतांग (सूयगड) : अंगसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान) वि.सं. २०३१
२३. स्मृतिचन्द्रिका : देवणभट्टविरचित, गव्हर्नमेण्ट ओरियण्टल लायब्ररी सिरीज, म्हैसूर, १९१८
२४. स्थानांग (ठाण) : अंगसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१

परिशिष्ट

‘पितर’ संकल्पना की दृढमूलता तथा व्याप्ति दर्शाने हेतु
निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत की है ।

(अ) वेद :

१. ऋग्वेद : पितृसम्राट यम, पितरों के गण, पितृपूजा इ. (१०.१४; १०.१५; १०.१६)

२. कृष्णयजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता) : पितर, पितृलोक, श्राद्ध, पितृयज्ञ इ. (काण्ड २, प्रपाठक ६, अनुवाक १२)
३. शुक्ल यजुर्वेद : पिण्डपितृयज्ञ (अध्याय २, कण्डिका २९-३४)
४. अथर्ववेद : देव, मनुष्य, असुर, पितर व ऋषि इन समाजों का निर्देश (१०.१०.२६ भारतीय संस्कृतिकोश पृ. ५६५)

(ब) ब्राह्मण व आरण्यक :

५. तैत्तिरीय ब्राह्मण व आरण्यक : पितर, पिण्डदान, पिण्डपितृयज्ञ, पितृप्रसाद, पितृलोक (प्रपाठक ३, अनुवाद १०, पृ. ६५-६८)
६. शतपथ ब्राह्मण : पिण्डपितृयज्ञ, पितृयज्ञ इ. का विस्तारपूर्वक वर्णन (द्वितीय काण्ड)

(क) उपनिषद् :

७. छान्दोग्योपनिषद् : पितर, पितृयाण, पितृलोक इ. (अध्याय ५, खण्ड १०)

(ड) स्मृति तथा टीका ग्रन्थ :

८. मनुस्मृति : पितर, तर्पण, श्राद्ध, पितृपक्ष, पितृयज्ञ, पितरों की चातुर्वर्ण्यवस्था, पितृपिण्ड, पितृपूजा, पितृतृप्ति इ. का विस्तृत वर्णन (अध्याय ३ औ ४)
९. मनुस्मृति (सर्वज्ञनारायण टीका) : पितृकर्म, पितृकल्प, पितृलोक, पितृयज्ञ (३२९.१७; ३५३.३०; ३६६.२२; ३.१२२)
१०. मनुस्मृति (कुल्लूक टीका) : पितृदेवता, पितृतर्पण, पितृतृप्ति, पितृकृत्य, पितृकर्म (१११.१४; १३९.१४; १६७.२८; १६८.३; २३२.१८)
११. मनुस्मृति (मेधातिथि टीका) : पितृकार्य, पितृतृप्ति, पितृपात्र (२.३७; ३.२३८; ३.२५२)
१२. याज्ञवल्क्यस्मृति (अपरार्क टीका) : पितृकार्य, पितृतृप्ति, पितृदेव, पितृदेवता, पितृयज्ञ, पितृपूजा (१.१०२; १.२१८; १.२४३; १.२५५; १.२६०)
१३. प्रजापतिस्मृति : पितृकर्म, पितृकार्य, पितृतर्पण, पितृतीर्थ (१.४९; १.१२८; १.१७४; १.१९७; ५१.६४; ६६.१)

१४. विष्णुस्मृति : पितृतर्पण (५९.२५; ५९.३०)
 १५. वेदव्यासस्मृति : पितृदेवता (३.६०)
 १६. वसिष्ठस्मृति : पितृकृत्य, पितृकर्म (११.२४; ११.३८)
 १७. बृहद्पराशरस्मृति : पितृदेवता (७.११८)
 १८. शंखस्मृति : पितृकर्म (१५.२५ (३८९))
 १९. कौटिलीय अर्थशास्त्र : पितर (पृ. १३४)
 २०. स्मृतिचन्द्रिका : पितृयज्ञ, पितृपात्र, पितृकार्य, पितृकर्म, पिण्डदान, श्राद्ध
 (५.३४.१०; ५.९९.११; ५.१२३.१५; ५.१४९.१८,१९; ५.१९५.४;
 ५.३०९.२१; ५.३२३.१९; ५.४२०.११)
 २१. चतुर्वर्गचिन्तामणि : श्राद्धविधि, पितृनिरूपण, श्राद्धदेशकथन, श्राद्धकालनिर्णय
 (सम्पूर्ण प्रथम भाग)

(इ) संहिता :

२२. जयाख्या संहिता : पितृकर्म, पितृतर्पण (२३.९; २३.४३)
 २३. परमेश्वरसंहिता : पितृकर्म, पितृतर्पण (२.१३८; ३.२०; ३.२५; ७.३३४)
 २४. पौष्करसंहिता : पितृकर्म, पितृतर्पण (२७.४१३; ३३.१६५)
 २५. शिवसंहिता : पितृकर्म (२/३.१७६)
 २६. वसिष्ठसंहिता : पितृकर्म, पितृतृप्ति, पितृदिवस, पितृदैवत (१२.१०; १४.५१;
 १९.१७; ३२.२२१)
 २७. बृहद्संहिता : पितृकार्य (८३.१; १०४.६२)

(फ) रामायण :

२८. बालकाण्ड : पितृदेवता, पितृकार्य, पितृदेव (१.१७.२३; १.४८.५;
 १.१३३.२)
 २९. अयोध्याकाण्ड : पितृलोक (२.९५.७)
 ३०. किष्किन्धाकाण्ड : पितृलोक (४.४०.४२)
 ३१. सुन्दरकाण्ड : पितृतृप्ति (५.५३९)

३२. युद्धकाण्ड : पितृतृप्ति (६.१२२९)

(ग) महाभारत

३३. आदिपर्व : पितृकार्य, पितृदेव, पितृदेवता (६७८; ८१.११.१२; ८४५.३)

३४. उद्योगपर्व : पितृपक्ष (५.१०७.२)

३५. शान्तिपर्व : पितृयज्ञ (१२.६३.२०; १२.६५.१९)

३६. अनुशासनपर्व : पितृकार्य, पितृपूजा (१३.१०.२४, ३०, ५०; १३.२३९(४))

(ह) पुराण :

३७. विष्णुपुराण : पितृदेवता, पितृपिण्ड (१.१९.७३; ३.१०.२३; ३.१८.१०५)

३८. मार्कण्डेयपुराण : पितृपूजा, श्राद्ध, पितृगण, पितृतर्पण, पितृपिण्ड, रुचि-
पितर संवाद, मनु के जन्म की कथा, स्वर्ग में किये गये पितरों का श्राद्ध
इ. का अतिविस्तृत वर्णन (अध्याय २८ से ३० तथा ९२ से ९४)

३९. वायुपुराण : सोमरस से पितरों का सम्बन्ध, विविध प्रकार के पितर, सात
प्रकार के पितृगण, श्राद्धविधि (प्रकर्ण २९.२४ से २८; प्रकर्ण ३८, पृ.
४४८ से ४६२)

४०. मत्स्यपुराण : दिव्यरूपधारी पितर, पितरपूजा, श्राद्ध प्रकरण, पितृयज्ञ,
तर्पण, पिण्ड, पितृवंश (अध्याय १४, १५, १६)

४१. ब्रह्माण्डपुराण : पितृतृप्ति, पितृकार्य, पितृदेव, पितृपूजन, १.२३.६७;
२.१०.१०४; २.१३.१३३; २.२०.७; २.४७.१९)

४२. भागवतपुराण : यज्ञ द्वारा पितरों की आराधना, पितरों का चन्द्रलोक में
जाकर सोमपान करना, पितृलोक (३.३२.१ से ३.२१; ४.२४.३८, ४१)

४३. कूर्मपुराण : पितृगण, तर्पण, पिण्ड, श्राद्ध (खण्ड २ २१(२)१; २२(३)१
से ४; २२(३)१० से १२; २२(३)५९, ६०; २७.३०)

४४. अग्निपुराण : पितृदेवता, पितृतृप्ति, पितृकार्य, पितृपक्ष (११५.१७, २०;
११६.४०; १५७.१)

४५. ब्रह्मवैवर्तपुराण : पितृदेव, पितृदान (२-३०; १६; २.४०; ६; २.४१; १५)

४६. स्कन्दपुराण : पितृगण, श्राद्ध, तर्पण (४४.१, २)

४७. वराहपुराण : पिण्डदान और श्राद्धोत्पत्ति (१८८.२ से ७)

४८. नरसिंहपुराण : पितृतर्पण (१.८)
 ४९. लिंगपुराण : पितृकर्म, पितृदेह (१.१५.६; २.६.३८)
 ५०. ब्रह्मपुराण : पितृतर्पण, पितृतृप्ति, पितृदेव, पितृदैवत (४३.७५; ५.१३१;
 ६०.५७; २१९.४९; २७२.१२)
 ५१. भविष्यपुराण : पितृतृज्ञ, पितृपूजा, पितृकार्य, पितृतर्पण, पितृतृप्ति (१.११४९;
 १.६५.११; १.१८३.१६; ३२२.१५; ३३०.३३)
 ५२. पद्मपुराण : पितृतृप्ति, पितृकार्य, पितृतर्पण, पितृदेव, पितृदेवता, पितृपूजा
 (१.१३.१४,१५; ४.८९.५३; ४.९४.२२.७९; ५.२७.४३; ५.३२.३८)
 ५३. शिवपुराण : पितृश्राद्धप्रभाववर्णन, पितृसर्गवर्णन, श्राद्धमाहात्म्य (अध्याय
 ४०, ४१)
 ५४. सौरपुराण : पितृतर्पण (४.१९)
 ५५. देविभागवतपुराण : पितृदान (९.१.१००)

(पुराणों का क्रम डेक्कन कॉलेज की डिक्शनरी के अनुसार
 लिया है ।)*

(क्ष) दर्शन :

५६. पूर्वमीमांसासूत्र : पितृतृज्ञ (६.८.१.१० (१५१०); ६.८.२.१९ (१५१२))
 ५७. शाबरभाष्य : पितृतृज्ञ (४.४.१९ (१२७७.२१); ६.८.८ (१५१०.५))

(ज्ञ) तन्त्र :

५८. महानिर्वाणतन्त्र : पितृकर्म (९.२८२; १०.२३)
 ५९. लक्ष्मीतन्त्र : पितृकर्म (३९.३८)
 ६०. कुलार्णवतन्त्र : पितृतृज्ञ (५.४५)
 ६१. तर्पण : तर्पण, पितर, श्राद्ध, पिण्ड (प्रबन्ध)
 ६२. पितर व पितृलोक : निबन्ध

★ (यह तालिका डेक्कन कॉलेज के संस्कृत शब्दकोश के आधार से बनायी
 गयी है ।)

गूंगो गोळतणा गुण गाय

- शी.

सार नाम धरावती रचनाओनो प्रारम्भ भगवान तीर्थङ्कर देवे ज कयों होवानुं जणाय छे. आचाराङ्ग सूत्रना पांचमा अध्ययननुं नाम भगवान महावीर देवे तथा गणधर श्रीसुधर्मास्वामी महाराजे 'लोकसार' अेवुं राख्युं छे, ते जोतां आ विधान तद्दन वाजबी ठरे छे. आ अध्ययनमां प्रभुअे, गणधर देवे तथा निर्युक्तकार तेमज वृत्तिकार महर्षिओअे तत्त्वज्ञाननो सार अतिअल्प पण अतिगम्भीर शब्दोमां आपणा माटे मूकी आप्यो छे. ए सार-लोकसार केवोक छे, तेनो स्वाद आपणे उपाध्यायजी महाराजनी ज वाणी द्वारा माणीअे :

लोकसार अध्ययनमां, समकित मुनिभावे
मुनिभावे समकित कह्युं, निज शुद्ध स्वभावे....

(१२५ गाथानुं स्तवन, ढाळ ३)

मन्यते यो जगत्तत्त्वं स मुनिः परिकीर्तितः ।

सम्यक्त्वमेव तन्मौनं मौनं सम्यक्त्वमेव वा ॥ (ज्ञानसारः १३/१)

तो जरा निर्युक्तिकार श्रुतकेवली भगवंतना मुखे पण सार शब्दनुं भाष्य सांभळी लइअे :-

लोगस्स उ को सारो ? तस्स य सारस्स को हवइ सारो ?।

तस्स य सारो सारं जइ जाणसि पुच्छिओ साह ॥२४४॥

आ गाथा वांचीअे त्यारे प्रथम क्षणे तो अेम ज थाय मनमां, के आ ते निर्युक्तिनी गाथा छे के कोई प्रहेलिका (समस्या, उखाणुं) छे ? निर्युक्तिकारे अत्यन्त प्रसन्नभावे पूछ्युं छे आ गाथामां के "लोकनो सार शो छे ? वळी अे सारनो सार शो हशे ? अने अे सारनाय सारनो पण सार शो होइ शके ? - तने जाण होय तो कहे !"

कृपानिधान निर्युक्तिकार वळी आनो उत्तर/उकेल पण पोते ज आपी

साध्वीदिव्यगुणाश्री-सम्पादित, प्रकाशनाधीन 'ज्ञानमञ्जरी'नी प्रस्तावनारूप लेख ।

दे छे :

लोगस्स सार धम्मो धम्मं पि य नाणसारियं बिंति ।

नाणं संजमसारं संजमसारं च निव्वाणं ॥२४५॥

(आचा. अध्. ५, उ.१ निर्युक्ति)

अर्थात्, “लोकनो सार ‘धर्म’ छे; धर्मनो सार वळी ‘ज्ञान’ छे; ज्ञाननो सार छे ‘संयम’; अने संयमनो सार छे ‘निर्वाण’ ।”

मारी अेक कल्पना छे के उपाध्यायजीने पोतानी आ उत्कृष्ट रचनानुं नाम ‘ज्ञानसार’ राखवानी प्रेरणा आ लोकसार अध्ययन अने तेना परनी आ बे निर्युक्ति गाथाओ उपरथी ज सांपडी होवी जोईअे. अने आ गाथामां पण ‘नाणसारियं’ पद तो छे ज ! आ कल्पना निराधार भले होय, पण अे रमणीय पण अेटली ज छे, अेनो इन्कार कोई नहि करे.

वस्तुतः लोकसार अध्ययन तेमज आ गाथाओनो नशो उपाध्यायजी ना मानस पर केटली हदे छवायो हशे, के अध्यात्मसार प्रकरणमां पण तेमणे आ सारनो उल्लेख कर्यो छे :

सम्यक्त्वमौनयोः सूत्रे, गतप्रत्यागते यतः ।

नियमो दर्शितस्तस्मात्, सारं सम्यक्त्वमेव हि ॥ (२/६/१९)

अरे ! ज्ञानाष्टकनो आ श्लोक जोईअे तो पण आ वातनो आपणने अंदाज अवश्य आवे :

निर्वाणपदमप्येकं भाव्य ते यन्मुहुर्मुहुः ।

तदेव ज्ञानमुत्कृष्टं निर्बन्धो नास्ति भूयसा ॥ (५/२)

सार अेटलो ज के सार नाम धरावती सर्वप्रथम रचना ते सर्वज्ञ-कथित लोकसार अध्ययन छे, अेम कही शकाय.

आ पछी तो श्रीकुन्दकुन्दाचार्यना समयसार, नियमसार, प्रवचनसार वगेरे ग्रन्थो आव्या, तो बीजा पण योगसार, तत्त्वसार जेवा प्राचीन तात्त्विक ग्रन्थो आव्या, तो उपदेशसार जेवा सामान्य औपदेशिक ग्रन्थो पण जोवा मळे ज छे. आ ज श्रेणीमां उपाध्यायजीना अध्यात्मसार तथा ज्ञानसार जेवा ग्रन्थो पण आवे.

अेक वात बहु स्पष्ट छे : कोई पण बाबतनो सार शुं ते समजवानी तेमज तेने पामी लेवानी मानवमननी झंखना छेक आदिकाळ जेटली पुराणी छे. आचाराङ्गनिर्युक्तिनी ज वात करीअे, तो निर्युक्तिनां मंडाण करतां ज निर्युक्तिकार सारनी शोध करतां फरमावे छे के - “अंगसूत्रोनो सार शो ?”; “आचाराङ्ग”, “तेनो सार ?”; “अनुयोग-अर्थ”, “तेनो सार ?”; “प्ररूपणा”, “प्ररूपणानो सार ?”; “चारित्र”; “चारित्रनो सार ?”; “निर्वाण”, “अने निर्वाणनो सार ?”; तो कहे “अव्याबाध सुख”. (आचा. अध्.१, उ.१, नि.गा. १६-१७)

तो उपाध्यायजी पण सारनी खोजमां क्यां पाछा पड्या छे ? तेमणे पण पोतानी अे शोधनुं परिणाम नोंधुं ज छे :-

सारमेतन्मया लब्धं श्रुताब्धेरवगाहनात् ।

भक्तिर्भागवती बीजं परमानन्दसम्पदाम् ॥

अेटले आपणे अेम कहीअे के ज्ञानसार अे जिन-प्रवचननुं सारदोहन तो छे ज, पण साथे साथे अे उपाध्यायजीअे करेली, प्रवचनना सारनी-अर्कनी, ऊंडी खोजनुं तत्त्वरसछलकतुं सुमधुर परिणाम पण छे, तो ते बिलकुल उचित पण छे अने महत्त्वपूर्ण पण छे, अेमां कोई शंका नथी.

*

ज्ञानसार अे ज्ञानना अमृतरसनो महासागर छे. उपाध्यायजी भले लखे के “पीयूषमसमुद्रोत्थं” - समुद्र थकी नहि प्रगटेलुं अमृत ते ज्ञान ! आपणी अपेक्षाअे तो श्रुतज्ञानना महासागरनुं मन्थन करीने उपाध्यायजीअे मेळवी आपेलुं अमृत ज छे आ ज्ञानसार !

अमारा मोटा महाराज पूज्यपाद आचार्य महाराज श्री विजयनन्दनसूरीश्वरजी महाराज, श्रीहारिभद्रीय ‘अष्टक प्रकरण’ ना सन्दर्भमां, कहेता के “माणस, जीवनमां, ३२ भूलो करे. जेम के पहेली ‘देव’ना विषयमां भूल करे; अेम ३२ भूल करे. आ अेक अेक अष्टक अे अेक अेक भूल दूर करी आपनारं अष्टक छे. ‘महादेवाष्टक’ भणो अेटले देवविषयक मान्यता बदलाय, शुद्ध थाय. आम ३२ अष्टके ३२ भूलो सुधरे.”

ज्ञानसार-अष्टकना सन्दर्भमां पण आ वात अटली ज साची-वास्तविक जणाय छे. धर्मतत्त्वना सन्दर्भमां थती भूलो जो हारिभद्रीय-अष्टक थकी दूर थाय, तो अध्यात्म-तत्त्वना सन्दर्भमां थती क्षतिओनुं निवारण करवा माटे ज्ञानसार-अष्टक अे सुयोग्य आलम्बन होवानुं अवश्य स्वीकारी शकाय.

जाणकारोना कथनानुसार, अध्यात्मसार तेमज ज्ञानसार- अे बत्रे प्रकरणोमां उपाध्यायजीअे, आवश्यकता प्रमाणे दिगम्बर मन्तव्योनुं निरसन अथवा शुद्धीकरण भले कर्युं होय; परंतु ते सिवाय, समग्रपणे तपासीअे तो, श्री हरिभद्राचार्य तेमज श्रीकुन्दकुन्दाचार्यनां तात्त्विक प्रतिपादनोना अद्भुत निचोड तारवीने, तेओए, आ बे प्रकरणोने, निश्चय-व्यवहारनां परम रहस्योथी छलकावी दीधां छे. तत्त्वविचारनो अर्क तारववानी अने सूक्ष्मेक्षिका थकी विरोधी भासता मतोमां समन्वय साधवानी आवी सूझ असामान्य ज गणी शकाय.

ज्ञानसारनी ज वात करीअे तो तेनो पहेलो श्लोक ज केटलो बधो मार्मिक अने अर्थपूर्ण छे ! आपणे, संसारवासी वैरागी गणाता जीवो, संसारने तुच्छ, असार अने अपूर्ण मानीने चालीअे छीअे त्यारे, अेक पूर्ण ज्ञानी आत्मानी नजरमां जगतनुं स्वरूप केवुं होय तेनो अणसार- Outline , उपाध्यायजी, प्रथम श्लोकमां आपणने आपे छे. ते श्लोक लखती-रचती वेळाअे, कदाच, तेमनामां, परमज्ञानीने ज लाधती कोई अनिर्वचनीय अनुभूति संक्रान्त थई होय तो ना नहि ! तेओ लखे छे के “सच्चिदानन्द-घन अेवा पूर्ण परम तत्त्वनी दृष्टिमां तो आ विश्व पूर्ण ज भासतुं होय छे.” अर्थात् आपणने जगत अधूरुं भासतुं होय तो ते आपणी अधूरपनी निशानी गणाय; पूर्ण ज्ञानीनी नजरमां तो जगतमां कशुं ज अधूरुं नथी होतुं.

आ श्लोक वांचतां ज चित्तमां उपनिषदनो पेलो मन्त्र झबकी ऊठे छे :

ॐ पूर्णमिदं पूर्णमदः पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवाऽवशिष्यते ॥

- बधुं ज पूर्ण छे : आ पण, ते पण; अेटले पूर्णमां ज पूर्ण ठलवाय छे; अने पूर्णमांथी ज्यारे पूर्णनी बादबाकी करीअे, त्यारे पण बाकी रहे ते पूर्ण ज होय छे.

अेक उदाहरणथी आ वात समजवानी कोशीश करीअे : Glogal Summit मळे त्त्यारे, तेमां भारतनो प्रतिनिधि आवे अथवा जाय, त्त्यारे 'भारत आव्युं', अथवा 'भारत गयुं' अेम ज व्यवहार थतो होय छे. वळी, अे प्रतिनिधि भारत छोडीने जाय त्त्यारे, Summit मां ते 'भारत' तरीके ओळख पामतो होवा छतां, भारत ओछुं थतुं नथी; पूर्ण भारत ज रहे छे; अने ते भारत पाछे फरे त्त्यारे पण, तेना आववाथी भारतनो कोई त्तूटेलो अंश पूराय छे तेवुं नथी; ते तो यथावत् पूर्ण भारत ज रहे छे.

बहु ऊंची अने ऊंडी वात छे आ. ज्ञानसारनो पहेलो श्लोक, मारी दृष्टिअे, उपनिषदना आ सूक्तनी ऊंचाईने आंबे छे.

ज्ञानसार प्रकरण विषे आवुं तो घणुं घणुं कही शकाय. केटलुं कहेवुं? उपाध्यायजी महाराजे आ ग्रन्थ रची आपीने तत्त्वपिपासुओ पर जे उपकार कर्यो छे तेनो बदलो वाळवानी आपणामां क्षमता नथी, अेटलुं ज कहीने वात आटोपी लउं छुं.

*

जेवा उपाध्याय यशोविजयजी तेवा ज उपाध्याय देवचन्द्रजी. बत्रे समान तात्त्विक पुरुषो. बत्रे समान अनुभवज्ञानी. बत्रे समान अध्यात्मपथना पथिक. बत्रेय पूज्य पुरुषो प्रमाण, नय अने निश्चय-व्यवहारना समान अभ्यासीओ, समान प्ररूपको अने समान ग्रन्थकारो. आगम अर्थात् जिन-प्रवचन, तेना अेक अेक शब्दमां अनन्त अर्थक्षमता अने अनेक रहस्यो संतायां-समायां होय छे, तेनुं भान अने तेनुं मर्मोद्घाटन करवामां निपुण अेवी असाधारण प्रतिभा धरावता आ बत्रे पूज्यो हता. उपाध्यायजी पछी सात-आठ दायका पछी देवचन्द्रजी भले थया होय, पण ते बत्रे वच्चेना भौतिक अन्तरनो छेद, तेमनी वच्चे सधायेला तात्त्विक अने अनुभूतिना साहचर्य-साम्य-सामीप्य थकी, ऊंडी जतो जणाय छे.

योगीराज आनन्दधनना पारस-स्पर्शे पोतानी धातुने वधु विशुद्ध बनावीने उपाध्यायजी जे साधनापथ उपर विहर्या अने आगळ वध्या, ते ज साधनापथ उपर विचरवानुं श्रीदेवचन्द्रजीअे पण पसंद कर्युं होइ, बत्रे ऋषितुल्य साधको

વચ્ચે જે સહ્ય કહો કે સામ્ય સધાયું, તે જોતાં, ઉપાધ્યાયજીના આલેખેલા, મન્ત્રાક્ષરસમા રહસ્યમય શબ્દો ઉપર દેવચન્દ્રજી મહારાજ વિવરણ લખે, તે એકદમ ઉચિત, બલ્કે ન્યાયોચિત બની રહે છે. માત્ર શાસ્ત્રો ભળી લઈએ કે શબ્દોના વ્યુત્પત્તિ અને નિરુક્તિ-પ્રાપ્ત અર્થ કરતાં આવડી જાય તેટલા માત્રથી આવા ગ્રન્થો પર વિવરણ કરવાનો કે ચર્ચા કરવાનો અધિકાર નથી મળી જતો. તેવો અધિકાર તો ત્યારે જ મળી શકે, જ્યારે તમે, કોઈ ને કોઈ અંશે કે રૂપે, તેમના જેવા હો.

આત્મસાધક સંત મુનિ શ્રી અમરેન્દ્ર વિજયજીને એકવાર વિનંતિ કરેલી : યોગદૃષ્ટિ વિશે આપ કાંઈક વિવરણ આપો, તો અમારા જેવાને તેનાં સાધનાલક્ષી રહસ્યો મળે. જવાબમાં તેમણે જણાવેલું : “આ વિષય પર વિવરણ કરવા જેટલી ક્ષમતા તથા કક્ષા હજી મેં મેળવી નથી, માટે હું નહિ લખી શકું.”

આ ઉપરથી આપણને સમજાય કે વિવરણનો અધિકાર એટલે શું ? એ પ્રાપ્ત કરવો કેટલો આકરો હોય છે, અને એ પ્રાપ્ત કરવા માટે કેટલી આકરી સાધના જરૂરી હોય છે ?

આ સાધના અને આ અધિકાર-બંને શ્રીમદ્ દેવચન્દ્રજી પાસે હતા; અને આપણા પરમ સદ્ભાગ્યે, તેઓએ તે અધિકારનો ઉપયોગ પણ કર્યો; જેનું પરિણામ છે જ્ઞાનમઝ્જરી. કેવું મીઠડું નામ ! સાધના ગમે તેટલી કઠોર ભલે હોય, પણ તેનું લક્ષ્ય જો ચિદાનન્દની મૌજ હોય, તો તેનો સાધક જ્ઞાનમઝ્જરી સરજી શકે; અને તો, તે સર્જન, ટીકાગ્રન્થ હોવા છતાં, સ્વતન્ત્ર ગ્રન્થરચનાનું ગૌરવ પામી શકે.

*

હા, જ્ઞાનમઝ્જરી એ શ્રીમદ્ દેવચન્દ્રજીનું એક આગવું ગ્રન્થસર્જન છે. વ્યવહારમાં ભલે તે જ્ઞાનસારની ટીકાનું નામ હોય- ટીકા ગણાતી હોય, પણ તેમણે ગ્રન્થના પદાર્થોને જે રીતે યોગ્ય છે, વિકસાવ્યા છે; જે રીતે એકએક પદ્ય અને તેના એક એક પદના મર્મને તેમણે પકડ્યો છે, તે જોતાં તેમની આ ટીકાને સ્વતન્ત્ર-મૌલિક ગ્રન્થસર્જન કહેવામાં લેશ પણ અત્યુક્તિ નથી થતી.

વસ્તુતઃ તો ઉપાધ્યાયજીના રચેલા શબ્દો સાથે કામ પાડવું એ જ

जेवातेवाना गजा बहारनुं गणाय. तेमना ग्रन्थ पर विवरण करवा माटे तेमना समानधर्मा होवुं अनिवार्य छे. अने देवचन्द्रजी महाराज तेमना अे हदे समानधर्मा छे - लागे छे के तेमणे तत्त्वज्ञाननी तिजोरी जेवा आ-ज्ञानसार ग्रन्थमां सुदृढतापूर्वक स्वैर विहार कर्यो छे, अने आ तिजोरीमांनां सघळ्यांय रत्नोनां, आपणे कल्पी पण न शकीअे तेवां, नवलां दर्शन कराव्यां छे.

बीजी, अर्वाचीन, कोई पण टीकाने आधारे आपणने लागे छे के ज्ञानसार तो सहेलो, समजी शकाय तेवो ग्रन्थ छे; तेनो गद्य-पद्य-अनुवाद पण गमे ते भाषामां, करी ज शकाय तेम छे. पण ज्ञानमञ्जरी अवलोक्या पळी, ओछामां ओछुं मने तो, प्रतीति थई गइ छे के आ ग्रन्थ समजवो सुगम के सहेलो जराय नथी. केटलीबधी सज्जता अने प्राथमिक भूमिकारूप तैयारी होय तो ज आ ग्रन्थमां, कांइक अंशे आपणी चांच डूबे तो डूबे.

देवचन्द्रजीअे आ ग्रन्थ उपर विवरण लखतां केवा अधिकारपूर्वक काम कर्युं छे, ते समजाववा माटे अेक-बे दाखला अहीं टांकुं छुं.

ज्ञानसारनो प्रथम श्लोक आ प्रमाणे प्रसिद्ध छे :

ऐन्द्रश्रीसुखमग्नेन लीलालग्नमिवाखिलम् ।

सच्चिदानन्दपूर्णैः पूर्णैः जगदवेक्ष्यते ॥१॥

आ श्लोकमां उत्तरार्धनो पाठ, अहीं आप्यो छे ते ज प्रमाणे उपाध्यायजीने खुदने संमत छे, अने तेथी ज तेओ, स्वोपज्ञ टबार्थमां-बालावबोधमां, अे पंक्तिनो अर्थ आम करे छे : "सत् क० सत्ता, चित् क० ज्ञान, आनंद क० सुख, ए त्रण अंशइ पूर्ण क० पुरो जे पुरुष तेणइं । दर्शन ज्ञान चारित्र ए त्रण अंशे पूर्ण - पूर्ण जगत् क० पूर्ण जग, अवेक्ष्यते क० देखइं, ते अधूरो कहीइं न देखइं" ॥ अर्थात्, सत्-चित्-आनन्दथी पूर्ण अेवो पुरुष, ज्ञानादिकथी पूर्ण जगतने देखे छे : तेनी पूर्ण दृष्टि-निश्चय दृष्टिनी अपेक्षाअे आ जगत पूर्ण छे, अपूर्ण नथी.

अने आ अर्थ ज आपणे त्यां मान्य छे, स्वीकार्य छे, अने ते रीते ज अध्ययन, व्याख्यान, विवरण - बधुं थतुं होय छे. हवे देवचन्द्रजी महाराज अहीं साव जुदा पडे छे. तेओ आ पंक्तिनो अलग ज पाठ स्वीकारे छे : अेवो

પાઠ કાં તો તેમની સામે હોવો જોઈએ; કાં તેમની સ્વતન્ત્ર પ્રતિભાએ એ પાઠની કલ્પના/રચના કરી હોવી જોઈએ. જે હોય તે, તત્ત્વની આપણને ખબર નથી, પણ તેમણે આ જુદો પાઠ સ્વીકાર્યો છે અને તે પાઠ પ્રમાણે જ તેમણે ટીકા પણ લખી છે, તે આપણી સમક્ષ ઉપલબ્ધ છે. જુઓ :

ऐन्द्रश्रीसुखमग्नेन लीलालग्नमिवाखिलम् ।

सच्चिदानन्दपूर्णेनाऽपूर्णं जगदवेक्ष्यते ॥

સુજ્ઞ જિજ્ઞાસુઓ અહીં- ઉત્તરાર્ધમાં કરવામાં આવેલા ફેરફારને નોંધી શકયા હશે. હવે તે અંશની ટીકા જોઈએ :-

“सत्-शुभं शाश्वतं वा चित्-ज्ञानं तस्य य आनन्दः तत्र पूर्णेन ज्ञानानन्दभृतेन मुनिना जगत् मिथ्यात्वासंयममग्नं मूढं विलोक्यते । पूर्णाः अपूर्णं जगद् भ्रान्तं जानन्ति ॥”

આ ટીકાંશમાં કુલ ત્રણ ફેરફારો જોવા મળે છે. ૧. સત્ પદનો અર્થ ઉપાધ્યાયજીએ સત્તા કર્યો છે, શ્રીમદે શુભં શાશ્વતં વા એવો કર્યો છે. ૨. ઉપાધ્યાયજીએ સત્-ચિત્-આનન્દ (સુખ) એમ ત્રણ અંશોથી પરિપૂર્ણ એવા દ્રશ્ય પુરુષની વાત વર્ણવી છે, જેનું તાત્પર્ય આપણા ચિત્તમાં ‘કેવલજ્ઞાની’ કે ‘સિદ્ધ પરમેષ્ઠી’ એવું હોવાનું સમજાય છે. જ્યારે શ્રીમદ્જી સત્-શુભં શાશ્વતં વા, ચિત્-જ્ઞાનં, તસ્ય (અર્થાત્ શુભ કે શાશ્વત એવું જે જ્ઞાન, તેનો) આનન્દઃ એવો અર્થ સમજાવી, તે આનન્દમાં પૂર્ણ (તત્ર પૂર્ણેન)- જ્ઞાનાનન્દભૃત જે મુનિ - આવો તાત્પર્યાર્થ આપે છે. અને ૩. ત્રીજો મહત્ત્વનો, ધ્યાનપાત્ર ફેરફાર તો આ છે : ઉપાધ્યાયજી જ્યાં પૂર્ણ જગત્ એવો પાઠ આલેખીને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રથી (નિશ્ચય દૃષ્ટિએ) પૂર્ણ જગતનાં દર્શનની વાત વર્ણવે છે, ત્યાં શ્રીમદ્જી અપૂર્ણ એવો પાઠ સ્વીકારીને [અપૂર્ણ] જગત્ - મિથ્યાત્વાસંયમમગ્નં મૂઢં એવો અર્થ આપે છે. અને તેનો સ્પષ્ટ સાર પણ આ શબ્દોમાં તેઓ આપે છે : “पूर्णाः अपूर्णं जगद् भ्रान्तं जानन्ति” ।

મૂઢ ગ્રન્થકારથી, તેમના સ્વોપજ્ઞ અર્થઘટનથી, સાવ જુદા પાઠવાનું અને પોતાની સ્વતન્ત્ર પ્રતિભા દ્વારા ઉપસાવેલ અર્થનું વર્ણન કરવાનું ગર્જું, ઉપાધ્યાયજીના સમાનધર્મા અર્થાત્ ઉપાધ્યાયજી જેટલી જ આધ્યાત્મિક અને અનુભવજ્ઞાનની

पहोंच धरावनार आवा देवचन्द्रजी सिवाय, बीजा कोनुं होय ?

अेक वातनी चोखवट अहीं ज करवी जोईअे. ज्ञानमञ्जरीनां विदुषी सम्पादिकाअे आ सम्पादनमां, देवचन्द्रजी-संमत पाठ (पूर्णेनाऽपूर्ण) नथी राख्यो, पण उपाध्यायजीसंमत (पूर्णेन पूर्ण) पाठ ज राख्यो छे. तेमनी समक्ष उपस्थित हस्तप्रतो पैकी अेक के बे ज प्रतमां अपूर्ण पाठ होइ तेमणे बहुमत-प्रतोने-ते परम्परामान्य होवाने कारणे - पाठ ज राख्यो छे. परंतु आम करवा जतां मुसीबत अे आवी पडेल छे के श्रीमद्जीअे टीकामां अपूर्ण पाठ स्वीकारीने ज विवरण कर्तुं छे. तेमणे वैकल्पिक रूपे, पहेलां पूर्ण पाठनुं विवरण कर्तुं होय अने पछी अथवा कहीने अपूर्ण पाठ दर्शावी तेनुं विवरण कर्तुं होय तेवुं तो टीकाग्रन्थमां जोवा नथी मळतुं ! फलतः मूळ ग्रन्थनो आ सम्पादनमां स्वीकृत पाठ अने ते परनो टीकाग्रन्थ - बन्ने साव नोखां पडी जाय छे; जे ग्रन्थथी अजाण जिज्ञासु माटे सन्दिग्धता सर्जी शके. अस्तु.

बीजुं उदाहरण जोईअे : प्रथम अष्टकना पांचमा श्लोकमां पूर्वार्धनो पाठ आ प्रमाणे छे : “पूर्वन्ते येन कृपणास्तदुपेक्षैव पूर्णता” । आनो टबार्थ :- “पूराइं जेणइं धनधान्यादिक परिग्रहे हीनसत्त्व लोभीओ पुरुष, [ते] धन-धान्यादि परिग्रहनी उपेक्षा ज पूर्णता कहीइं” - आवो छे. अहीं श्री देवचन्द्रजी महाराज जरा जुदा पडे छे, अने आ श्लोकगत ‘तदुपेक्षैव’ अे पदना बे अलग अलग अर्थ आपे छे. जुओ : (१) “पूर्वन्ते’ ‘येन’ प्रचुरा भवन्ति ‘सा’ -पूर्णता उपाधिजा ‘उपेक्षया एव’ - अनङ्गीकारयोग्या एव । (२) अथवा तदुपेक्षा एव, न हि एषा पूर्णता, किन्तु पूर्णतात्वेन उपेक्षते - आरोप्यते इत्यर्थः ॥” (अहीं उपेक्षते-आरोप्यते होइ शके.)

आ बन्ने विकल्पोमां ‘तदुपेक्षा’ पदनो ‘तस्य उपेक्षा-तदुपेक्षा’ अेम मानीने विवरणकार चालता नथी. पहेला अर्थमां सा उपेक्षया अेवो तदुपेक्षानो अर्थ दर्शावे छे, अने बीजामां सा उपेक्ष्यते अेवो अर्थ तेमना मनमां छे. प्रतिभानो आ उन्मेष, उपाध्यायजीना शब्दोमां अने तेनां अगाध रहस्योमां श्रीमद् केवा तो गरकाव थई जता हसे तेनी, गवाही आपी जाय छे.

हजी अेक उदाहरण जोई लईअे : २४मा शास्त्राष्टकना त्रीजा श्लोकमां ग्रन्थकारे शास्त्र शब्दनी निरुक्ति आपी छे : “शासनात् त्राणशक्तेश्च बुधैः

शास्त्रं निरुच्यते” । अर्थात् हित शीखवे अने रक्षण करवानी शक्ति धरावे ते शास्त्र. हवे आ श्लोक उपरनी टीका जोइशुं तो श्रीमद्जीनी विलक्षण प्रज्ञानो मजानो उन्मेष जोवा मळशे. तेमणे करेलो अर्थ कांईक आ प्रमाणे छे : “त्राणं-रक्षणं तस्य शक्तिः-सामर्थ्यं यस्य सः, तस्य शासनात्-शिक्षणात् शास्त्रं निरुच्यते-व्युत्पाद्यते । अटपटो लागे तेवो पण आ अर्थ श्रीमद्जीनी क्षमताने समजवा माटे उपकारक छे.

तो आ त्रणेक उदाहरणोथी ज्ञानसार पर विवरण करवा माटे देवचन्द्रजीनो पूर्ण अधिकार होवानुं सिद्ध थाय छे; ज्ञानमञ्जरी अे केवळ टीकाग्रन्थ न बनी रहेतां ते श्रीमद्जीनुं आगवुं सर्जनकर्म छे अेम पण पुरवार थई शके छे; अने ते रीते श्रीमद्जी ते उपाध्यायजीना समानधर्मा होवानुं पण सुदुढ थाय छे. अने साथे ज आ ग्रन्थनां मर्म पामवानुं, आपणा बधा माटे, धारीअे छीअे तेटलुं सरळ नथी, ते वात पण निश्चित थई जाय छे.

*

उपाध्यायजी महाराज अने देवचन्द्रजी महाराज-आ बत्रेनी रुचि नय अने निक्षेपनी विचारणामां अेक समान वर्तती जोवा मळे छे. दरेक पदार्थने आ बत्रे ग्रन्थकारो नयवादनी दृष्टिअे सतत मूलवता रहे छे, अने ते रीते क्यांय अेकान्तवादनो गंध पण प्रवेशे नहि, तेनी चांपती काळजी राखता रहे छे. उपाध्यायजीना तर्कप्रधान ग्रन्थो - नयप्रदीप, नयरहस्य, अनेकान्तव्यवस्था, नयोपदेश वगरे; अने श्रीमद्जीना तत्त्वप्रधान ग्रन्थो नयचक्रसार वगरे, आ बाबतनी साख पूरे छे.

ज्ञानमञ्जरीनुं अवगाहन करीअे तो त्यां पण आ बाबत आंखे ऊडीने वळगशे ज. लगभग के महदंशे दरेक अष्टकनी टीका आरंभतां शरुआतनी भूमिका के अवतरणिकामां, जे ते अष्टकनो विषयनिर्देश करनारो जे शब्द होय, तेना ४ निक्षेपा श्रीमद्जीअे दर्शाव्या छे; अेटलुं ज नहि, ते पदार्थ कया नयना मते क्यां-क्यारे-केवी रीते संभवे, ते पण प्रायः साते नयोने आश्रयिने दर्शावता रह्या छे.

दा.त. पहेलुं पूर्णता-अष्टक छे, तो पूर्णना निक्षेप अने विविध नयमते पूर्ण कोण गणाय तेनी चर्चा प्रथमाष्टकना आठमा श्लोकनी टीकामां विस्तारथी

करी छे. अे ज रीते, बीजुं मग्नता अष्टक छे, तो ते मग्न पदना ज निक्षेपनुं तेम्रज नयोनी दृष्टिअे मग्न कोण तेनुं निरूपण बीजा अष्टकना प्रथम श्लोकमां जोवा मळे छे. अने आवुं प्रतिपादन अनेक स्थळे जोवा मळे छे. कोई पण मुद्दाने नय-निक्षेपनी दृष्टिथी तोलवा-मूलववानी श्रीमद्जीनी विलक्षण प्रतिभानो तथा स्याद्वादप्रीतिनो, आथी, अंदाज आवी शके छे.

देवचन्द्रजी कोरा शास्त्रज्ञ नथी, पण अनुभवज्ञानी पण छे. श्रुतमय बोध तीव्र होवानी साथे साथे तेमनो भावनामय बोधना प्रदेशमां पण प्रवेश होवानुं, तेमनां सहजभावे थये जतां, मार्मिक अने वेधक प्रतिपादनो परथी, कळी शकाय तेम छे. आने कारणे कोइ पण विषयनी विशद प्रस्तुति तेमने सहज छे. पोते ते ते प्रतिपाद्य मुद्दा परत्वे कोइ प्रकारना सन्देहनो के द्विधानो भोग नथी बन्या; स्पष्ट छे, अने तेथी तेमना द्वारा थतुं स्पष्ट प्रतिपादन आपणने पण असन्दिग्ध समजण आपी शके छे. अेमनी अनुभवज्ञान-प्लावित वालीना थोडाक स्फुर्लिंगो अहीं नोंधीअे :

- मग्नाष्टक (के मग्नाष्टक)ना पांचमा श्लोकमां भगवतीसूत्रना हवाला साथे तेजोलेश्यानी वृद्धिनी वात उपाध्यायजी महाराजे निरूपी छे. भगवतीजीमां केटला संयम-पर्यायवाळा साधुनी तेजोलेश्या केवी होय तेनुं प्रतिपादन आवे छे. ते केवा प्रकारना साधुने होय, तेनो खुलासो 'मग्ना'ना सन्दर्भमां 'इत्यम्भूतस्य' कहीने उपाध्यायजीअे आप्यो छे. पण श्रीदेवचन्द्रजी तेनुं विशदीकरण करतां, १. तेजोलेश्यानी व्याख्या अने २. सूत्रगत आ प्रतिपादन कोने लागु पडे तेनी चोखवट अेटली सरळ-सहजपणे करी आपे छे के आपणा मनमां ते विषे कोइ ननु न च न रहे. जुओ-

१. तेजोलेश्या सुखासिका ॥ २. एतच्च श्रमणविशेषमेवाश्रित्योच्यते, न पुनः सर्व एवविधो भवति ॥

आ ज प्रसंगमां तेमणे संयमस्थान-प्ररूपणा लंबाणपूर्वक करी छे, तेमां पण शास्त्रानुसारी एक मार्मिक विधान करीने प्ररूपणाने खूब विशद बनावी दीधी छे. आ रहुं ते विधान :

आदितः अनुक्रमसंयमस्थानारोही नियमात् शिवपदं लभते । प्रथममेव उत्कृष्ट-मध्यम-संयमस्थानारोही नियमात् पतति ॥

तो आ प्रसंगनो ज उपसंहार करतां तेमणे संयमस्थान अने संयमपर्यायनो समन्वय साधीने साधुना सुखनुं माप वर्णवता सम्प्रदायनो जे उल्लेख कर्यो छे, ते पण जोवा जेवो छे :

अत्र परम्परा-सम्प्रदायः-जघन्यतः उत्कृष्टं यावत् असंख्येयलोका-काशप्रमाणेषु संयमस्थानेषु क्रमाक्रमवर्तिनिर्ग्रन्थेषु मासतः द्वादशमाससमयप्रमाण-संयमस्थानोल्लङ्घनोपरितने वर्तमानः साधुरीदृग्देवतातुल्यं सुखमतिक्रम्य वर्तते इति ज्ञेयम् ॥

— प्रशस्त कषायनी चर्चा आपणे त्यां घणीवार थती होय छे. पोताना कषायादिकने 'प्रशस्त'नुं विशेषण आपीने तेनो बचाव करवानी, बल्के तेनुं समर्थन करवानी वृत्ति पण क्यारेक क्यारेक जोवा मळे छे. आवा प्रसंगोए आपणने घणी द्विधा अनुभवती होय छे. आवी द्विधानो छेद उडाडतां श्रीमद्जी लखे छे :

प्रशस्तमोहः साधने असाधारणहेतुत्वेन पूर्णतत्त्वनिष्पत्तेः अर्वाक् क्रियमाणोऽपि अनुपादेयः । श्रद्धया विभावत्वेनैवावधार्यः । यद्यपि परावृत्तिस्तथापि अशुद्धपरिणतिः, अतः साध्ये सर्वमोहपरित्याग एव श्रद्धेयः ॥

(मोहत्यागाष्टक-प्रथम श्लोक-अवतरणिका ।)

— इन्द्रियो सदा अतृप्त रहे छे; कदापि ते तृप्त नथी थती; आ मुद्दाने बहु अल्प शब्दोमां श्रीमद्जी हृदयवेधी रीते रजू करे छे : “अभुक्तेषु ईहा, भुज्यमानेषु मग्नता, भुक्तपूर्वेषु स्मरणं, इति त्रैकालिकी अशुद्धा प्रवृत्तिः । इन्द्रियार्थरक्तस्य तेन तृप्तिः क्व ? ॥” (इन्द्रियजयाष्टक-३).

— मुनिअे पंचाचारनुं पालन क्यां सुधी-केटलुं करवुं जोइअे ? खास करीने छल्ला गुणठाणाथी आगळ वधवानुं आवे त्यारे क्यां केटलुं आचारपालन होय ? आ मुद्दाने देवचन्द्रजी अे आवी रीते विशद करी आप्यो छे :

“क्षायिकसम्यक्त्वं यावन्निरन्तरं निःशङ्काद्यष्टदर्शनाचारसेवना । केवलज्ञानं यावत् कालविनयादिज्ञानाचारता । निरन्तरं यथाख्यातचारित्रादर्वाक् चारित्राचारसेवना । परमशुक्लध्यानं यावत् तपआचारसेवना । सर्वसंवरं यावद् वीर्याचारसाधना अवश्यंभावा । नहि पञ्चाचारमन्तरेण मोक्षनिष्पत्तिः ।गुणपूर्णतानिष्पत्तेः

अर्वाग् आचरणा करणीया । पूर्णगुणानां तु आचरणा परोपकाराय ॥”
(क्रियाष्टकनी अवतरणिका).

आवां तो अनेक स्थानो ज्ञानमञ्जरीमां जडे, जे आपणा बोधने विशद करे, अने आपणी शंका, भ्रमणा अने विकल्पजाळने भेदी नाखे; अने देवचन्द्रजीना अनुभवज्ञाननी शाख पूरे.

पदार्थोनी व्याख्याओ पण देवचन्द्रजी भारे मार्मिक आपे छे. जेवी मार्मिक तेवी ज हृदयंगम पण. उपाध्यायजी महाराजनो वारसो, आ बाबतमां पण, तेमणे बराबर जाळव्यो छे. थोडीक व्याख्याओ नोंधीअे :

“कर्तृत्वम् - एकाधिपत्ये क्रियाकारित्वम् ।” (२/३) ॥

“लोभपरिणामः परभावग्रहणेच्छापरिणामः, आत्मगुणानुभवविध्वंसहेतुः ।”
(३/२) ॥

“क्रिया हि वृत्तिरूपा, भावपरिणतिस्तु आत्मगुणशुद्धिरूपा ।” (३/४) ॥

“परभावकरणे कर्तृतारूपो अहंकारः अहम् । सर्व-स्वपदार्थतः भिन्नेषु पुद्गलजीवादिषु ‘इदं ममे’ति परिणामो ममकारः ।” (४/१) ॥

“अन्तर्मुहूर्तं यावत् चित्तस्य एकत्रावस्थानं ध्यानम् ।”

“आज्ञाया अनन्तत्व-पूर्वापराविरोधित्वादिस्वरूपे चमत्कारपूर्वकचित्तविश्रामः आज्ञाविचयधर्मध्यानम् । एवमपायादिष्वपि सानुभवचित्तविश्रान्तः ध्यानम् ।”
(६/४) ॥

“यस्य सम्यग्दर्शनादिगुणक्षयोपशमः स्वरूपनिर्धार-भासन-रमणात्मकः अन्यनिमित्ताद्यालम्बनं ऋते स तात्त्विकः (क्षयोपशमः) ।”

“यच्चोपादेयत्वेन स्वतत्त्वनिर्द्धार-भासन-रमणरूपं, हेयबुद्ध्या परभावत्याग-निर्धार-भासन-रमणयुक्तं रत्नत्रयीपरिणमनं भवति तद् भेदरत्न-त्रयीरूपम् ।”

“यच्च सकलविभावहेयतयाऽप्यवलोकनादिरहितं विचरण-स्मृति-ध्यानादिमुक्तमेकसमयेनैव सम्पूर्णात्मधर्मनिर्धार-भासन-रमणरूपं निर्विकल्प-समाधिमयं [तद्]अभेदरत्नत्रयीस्वरूपम् ।” (८/४) ॥

- आवी तो अगणित व्याख्याओ आ टीकाग्रन्थमां अभरे भरी छे. तेथी

ज जेने तात्त्विक समजणनो खप छे तेने माटे तो आ टीका गोळनुं गाडुं ज बनी रहे तेम छे.

श्रीमद्जीअे प्रसंगोपात्त वेरेलां बोधदायक वचनो पण अहीं अनेक स्थाने जोवा मळे छे. एक-बे अेवां वचनो आपणे पण वागोळीअे :-

“अहह ! बन्धसत्तातोऽपि उदयकालः दारुणः । येनात्मनो गुणावरणता । अतः स्वरूपसुखे रुचिः कार्या ।” (१/७) ॥

“कर्तृत्वकाले न अरत्यनादरौ तर्हि भोगकाले को द्वेषः ? उदयागतभोगकाले इष्टनिष्ठतापरिणतिरेव अभिनवकर्महेतुः । अतोऽव्यापकतया भवितव्यम् । शुभोदयोऽपि आवरणम्, अशुभोदयोऽप्यावरणम्, गुणावरणत्वेन तुल्यत्वात् का इष्टानिष्ठता ? ।” (४/४) ॥

आम, ज्ञानमञ्जरीनी अने तेना परिप्रेक्ष्यमां देवचन्द्रजीनी केटलीक, आपणी अल्प मतिअे समजाइ तेवी खूबीओ अहीं नोंधी छे. अलबत्त, आ तो मात्र आछेरी झलक ज गणाय. अेनो वास्तविक अने ऊंडाणभर्यो परिचय तथा लाभ पामवो होय तो तो आखी ज्ञानमञ्जरीनुं अवगाहन ज करवुं पडे. आमां डूबकी मारे तेने अध्यात्म-विश्वना अद्भुत अने अवनवा भावो मळे एमां कोई शंका नथी.

*

ढूक नूँध :

(१) ७४१ वर्ष जूनुं एक सतवसरण

सुरेन्द्रनगर जिल्लाना ध्रांगध्रा शहेरमां श्रीअजितनाथ भगवानना देरासरमां ऊपरना गभारामां एक पत्थरनुं समवसरण बिराजमान हतुं, जेने हालमां ज निर्माण थयेल नूतन मण्डपमां नूतन पीठिका पर प्रतिष्ठित करवामां आव्युं छे. ध्रांगध्रानी आणंदजी कल्याणजीनी पेढी हस्तकना आ देरासरमां सं. २०६२ना चातुर्मासमां भव्य देवकुलिकाओ अने सुन्दर मण्डपमां अन्य प्रतिमाजीओ साथे आ समवसरण पुनः प्रतिष्ठित करेल छे. आखुं समवसरण एक ज पत्थरमां छे. घसारो लागेलो होवाथी हमणां लेप करवामां आव्यो छे, जेनाथी समवसरणनी सुन्दरतामां वधारे उठाव आव्यो छे. लेपकारनी कुशलताना कारणे समवसरणनुं शिल्प तथा झीणी कोरणी ढंकाइ जवा पामी नथी ए पण अहीं नूँधवुं जोइए.

आ समवसरणमां श्रीवासुपूज्य स्वामीना चौमुखजी छे जे पत्थरमां ज कोरेला छे. समवसरण लगभग अढी फूट ऊंचुं छे. सौथी नीचे चार इंच पहोळी पीठिका छे, ऊपर त्रण गढ छे. सौथी नीचेना गढमां पालखी, गाडा, हाथी, घोडो वगैरे स्पष्ट जोई शकाय छे. बीजा गढमां पशु-पक्षीओ-साप, वान्दरो, सिंह, हाथी, पाडो वगैरे देखाय छे. त्रीजा गढमां पर्षदाओ छे. प्रभुजीनी आजुबाजु चामरधारी अने ऊपरना भागे हाथी जोवामां आवे छे. टोच ऊपर पत्थरनो छूटो कळश हतो. तेनी जग्याए आरसनुं कल्पवृक्ष हमणां नवुं बनावीने बेसाडवामां आव्युं छे. जेनाथी समवसरणनी सुन्दरतामां ऊमेरो थयो छे.

पीठिकाना भागमां संस्कृत भाषामां लेख कोतरेलो छे. लिपि जैन देवनागरी छे. चारे बाजु फरती बे पंक्तिमां लेख गोठव्यो छे, अक्षरो लगभग एक इंच ऊंचाईना छे.

॥ए०॥ संवत १३२२ वर्षे माघसुदि ५ बुधे उमारधि (?) ग्रामे श्री वासुपूज्यचैत्ये अत्र (?) समवसरणे श्रीश्रीमालः ज्ञातीय सुत (?) बील्हणेन प्रथमं श्री वासुपूज्यबिम्बं पितृव्य ऊदा श्रेयसे तथा द्वितीयबिम्बं मातृ कुणिम-
--- तृतीयबिम्बं भ्रातृ-- श्रेयोर्थे तथा चतुर्थं बिम्बं मातामही तेऊ श्रेयसे कारितं

प्रतिष्ठितं च देवभद्रसूरि सन्ताने श्रीराजविहारीय श्रीसोमप्रभसूरिशिष्यैः
श्रीप्रभाचन्द्रसूरिभिः ॥ शुभं भवतु संघस्य ॥

सारांश : सं. १३२२ना वर्षमां उमारधि नामना गाममां श्रीवासुपूज्य-
स्वामीना चैत्यमां श्रीमालज्ञातीय ठक्कुर बील्हणे समवसरण स्थाप्युं जेमां श्रीवासुपूज्य
स्वामीनुं प्रथम बिम्ब काका ऊदाना श्रेयार्थे, द्वितीय बिम्ब माता कृणिमदेना
श्रेयार्थे, तृतीय बिम्ब भाईना श्रेयार्थे अने चोथुं बिम्ब दादी तेऊना श्रेयार्थे कराव्युं
तथा देवभद्रसूरिनी परम्परामां राजविहारीय श्रीसोमप्रभसूरिना शिष्य श्रीप्रभाचन्द्रसूरिअे
प्रतिष्ठा करी.

लेखमां केटलाक शब्दो-अक्षरो उकेली शकाया नथी. उमारधि गाम
घ्रांगधानी आसपास ज होवुं जोईए परंतु कोई माहिती मळी शकी नथी. आ
गाम तथा राजविहारीय पक्ष के गच्छ विशे इतिहासविदो प्रकाश पाडे एवी
अपेक्षा.

- उपा. भुवनचन्द्र

(२) अनुसन्धान ४३-४४ मांता लेखो विशे पूवक तोंध

- (१) अनु० ४३, पृ. ४३. 'सुजैत्रपुर मण्डन महावीरजिनस्तोत्र'मां निर्दिष्ट
सुजैत्रपुर ते वर्तमाननुं खेडा-जिल्लानुं सोजीत्रा होवानुं जणाय छे. आ
जाणकारी आपता मुनि श्रुततिलकविजयजीए एम पण जणाव्युं के
वर्तमानमां पण सोजीत्रामां महावीरस्वामीनुं देरासर छे.
- (२) अनु० ४४मां श्रीरत्नसिंहसूरिकृत चोंत्रीस लघुकृतिओनो समुच्चय प्रकाशित
थयो छे. ते अंगे केटलीक ज्ञातव्य अने महत्त्वपूर्ण वातो डॉ. मधुसूदन
ढांकी तरफथी प्राप्त थई छे, ते आ प्रमाणे छे :-
- ⊙ आमां निर्दिष्ट धर्मसूरि- राजगच्छना हता. चन्द्रगच्छ ज, पाछळथी,
कोईक राजवीए - घणा भागे त्रिभुवनगढना राजवीए - दीक्षा लेतां,
राजगच्छ कहेवायो.

- ⊙ ई. ११४७ मां दिगम्बर पं. गुणचन्द्रे प्रतिष्ठित करेली जिनप्रतिमा अजमेरना म्युजियममां छे. तेने धर्मसूरिए वादमां परास्त करेलो.
- ⊙ अजमेरमां चाहमान राजाए राजविहार-प्रासाद करावेलो. शाहबुदीन घोरीए पृथ्वीराजने हराव्या पछी अजमेर पर चडाई करी (ई. १२०५) पछी ते मन्दिरना स्थाने मस्जीद (ई. १२२५) बनी. तेमां ते मन्दिरना अवशेष जोवा मळे छे. ढाई दिनका झूंपडा वाळी मस्जीद.
- ⊙ शङ्खेश्वरनां ५ स्तोत्रो आ समुच्चयमां छे, ते कदाच सौथी जूनां स्तोत्रो छे. अद्यावधि उपलब्ध शङ्खेश्वर-स्तोत्रोमां सौथी जूनुं स्तोत्र आ. मुनिचन्द्रसूरिनुं मळे छे. तेमांनी नोंध अनुसार, ई. १०९५मां शङ्खेश्वरनी प्रतिमा धरतीमांथी प्राप्त थई हती. सज्जन नामना श्रावके त्यां देरासर कराव्युं हतुं. ते स्तोत्र करतां पण आ पांच स्तोत्र वधु जूनां लागे छे. जोके एमां ऐतिहासिक कशी वातो मळती नथी.
- ⊙ ए ज रीते भरुच विषेनुं स्तोत्र छे, ते पण कदाच ते विषयनुं सर्वप्रथम स्तोत्र जणाय छे. मन्त्री आम्रभट्टे भरुचमां, शत्रुंजय परना आदिनाथ चैत्य जेवडुं मोटुं देरासर नामे 'शकुनिकाविहार', त्यां बंधावेलुं, जे आजनी जुम्मा मस्जीदरूपे मौजूद छे. तेनी छतो, रंगमण्डप आदि घणां विशाल छे. स्तम्भो पण कोरणीवाळां छे.
- ⊙ 'कुमारविहार' विषयक स्तोत्र महत्त्वनुं छे. परन्तु ते २४ जिनालय नहि, पण ७२ जिनालय होवानुं वधु संभवित छे. १ देवकुलिकामां १ जिन होय, ए रीते ७२ जिननी ७२ कुलिका होय तो शक्य छे.

-शी.

વિહંગાવલોકન

- उपा. भुवनचन्द्र

અનુસંધાન-૪૨ ને સુશોભિત કરતી એક રચના - 'આનન્દસમુચ્ચય' એક લઘુગ્રન્થ જ છે. વિષય, પ્રૌઢિ, કવન ઇત્યાદિ અનેક દૃષ્ટિએ પ્રગલ્ભ કહી શકાય એવી કૃતિ છે. રચયિતા સમર્થ યોગી પુરુષ છે, જે જૈન પરમ્પરાના જ મુનિ હોય એમ માનવા મન લલચાય છે. સમ્પાદકશ્રી કહે છે તેમ એ 'કોઈ ખાસ સમ્પ્રદાયથી બન્ધાયેલા નથી', તે સાચું છે; કિન્તુ, ષડ્દર્શનોનો સમન્વય કર્તાએ જે રીતે કર્યો છે, જિનેશ્વર માટે જે શબ્દોમાં આદર વ્યક્ત થયો છે અને આ રચના જૈન જ્ઞાનભण्डारમાં જ પ્રાપ્ત થાય છે વગેરે મુદ્દાનો વિચાર કરતાં જૈન પરમ્પરા સાથે કર્તાનો નિકટ સમ્બન્ધ અવશ્ય સ્થાપિત થાય છે.

એમ જણાય છે કે શ્રમણ સંઘમાં હઠયોગની ગોરખસમ્પ્રદાયની ગહન અસર ઝીલીનારો એક વર્ગ ક્યારેક ઉદ્ભવ પામ્યો હતો, પણ એ વધારે સ્થિર કે સમૃદ્ધ થયો નથી. અનુ૦ ના કેટલાક મહિના પૂર્વેના અંકમાં આવા જ નામ અને વિષયવાળી ગુજરાતી રચનાઓ પ્રસિદ્ધ થઈ હતી. આ વિસરાઈ ચૂકેલા 'સમ્પ્રદાય'ની કૃતિઓ અનુ૦ દ્વારા કદાચ સર્વપ્રથમ વાર પ્રકાશમાં આવે છે.

યોગસાધના સમ્બદ્ધ બિન્દુઓને કાવ્યાત્મક શૈલીમાં આમાં ગૂંથી લેવામાં આવ્યા છે. ઉચ્ચ કોટિનું પાણ્ડિત્ય અને યોગમાર્ગનું સ્વાનુભવસિદ્ધ નિરૂપણ-બંનેનો સુન્દર સમન્વય આ કૃતિમાં જોવા મળે છે. કૃતિ શુદ્ધપ્રાય: છે. પાઠાન્તરો બીજી હસ્તપ્રતમાંથી જે મળ્યા છે તેમાં આખા ચરણો પણ જુદા પડે છે, તેથી કર્તાએ પોતે એ સુધારા કર્યા હોય એવી સમ્ભાવના રહે છે.

ઉદ્દૃત શ્લોકોમાં 'ચલે ચિત્તે૦' એ શ્લોકમાં 'વનં' પાઠ સંગત છે - 'ધનં' કલ્પવાની જરૂર નથી. ચિત્ત ચંચલ હોય ત્યારે વન પણ લોક સમાન છે - ખીડ સમાન છે અને ચિત્ત સ્થિર થાય ત્યારે લોક-લોકોની ખીડ પણ વન સમાન છે એવો ભાવ સમજી શકાય છે.

મુનિ રત્નસિંહ કૃત ચાર લઘુસ્તોત્રો મુનિદ્વય દ્વારા સમ્પાદિત થઈને આ અંકમાં પ્રસિદ્ધ થયા છે. 'સૌન્દર્યલહરી'ની પાદપૂર્તિ રૂપે રચાયેલું 'આનન્દલહરી'

नोंधपात्र छे. आधारभूत प्रति कया समयनी छे ते सम्पादकोए नोंध्युं नथी. योग्य शुद्धपाठो योजीने कृतिमां दर्शाव्या छे अने भूमिकामां कृति अने कर्ता विशे पर्याप्त ऊहापोह कर्यो छे.

आ ज सम्पादक युगल द्वारा लोंकागच्छना श्रीपूज्योना त्रण भास पण सम्पादित थया छे. लोंकागच्छना आचार्य विशेनी रचनाओनुं सम्पादन करवा द्वारा सम्पादक मुनियुगले संशोधकने छाजे एवी प्रतिबद्धता दर्शावी आपी छे. आ त्रणे कृतिओ इतिहास-भाषा-समाजजीवन आदि विषयोना अभ्यासीओने रसप्रद बने एवी छे.

कठिन शब्दोनो कोश आप्यो छे तेमां 'सेती', 'वीसूधे' जेवा शब्दो हजी उमेरी शकात. मूल गुजराती पाठ यथातथ रूपे तैयार करवामां आव्यो छे तेमां सम्पादकोनी चोकसाई जणाइ आवे छे. मुनिश्रीसुजसविजय-सुयश विजयजीनी सम्पादित कृतिओ अनु०मां आ सर्वप्रथम प्रगट थई छे. आशा-अपेक्षा रहे के संशोधन-सम्पादन क्षेत्रे ते सक्रिय रहेशे.

म. विनयसागरजीए विजयदेवसूरिविषयक बे भास सम्पादित कर्या छे. कृति-कर्ता विषयक पूरक विगतो अन्यत्रथी एकत्र करीने आपवी-ए पद्धति सम्पादकनी मुद्रासमान छे. कृतिना पाठमां वाचनदोषो थोडा रह्या छे. भास २, कडी ३- त्रीजुं चरण 'जे दमइं रे इंद्री मुनिताज' एम वाचवुं जोईए. क. ५मां 'जिहां महीयल मेर' छे त्यां 'जिहां'ने स्थाने 'जां' साचो पाठ गणाय.

आ ज सम्पादके 'जयकेसरीसूरि' विषयक चार भास पण सम्पादित करीने आप्या छे. बृहत् ग्रन्थो पर काम करीए एटला ज अवधानपूर्वक आवी लघुकृतिओ पर पण काम करवुं - एवी निष्ठा नवोदित संशोधनकारोए आ वयोवृद्ध विद्वद्वर्य पासेथी शीखवा जेवी छे.

भास १, क. २- 'लाखणदेविउं दार'ने स्थाने 'लाखणदेवि उदार' एम होवुं जोइए. भास ४, क. ३मां 'वाणी अमी यति सूध'ने स्थाने 'वाणी अमीय ति सूध' एम वांचवुं जोइतुं हतुं.

जैन विद्याना फ्रेन्च अभ्यासी विदुषी कोलेट काइयाने श्रद्धांजलि अर्पतो लेख आ अंकमां छे. जैन अने भारतीय विद्याना क्षेत्रे काम करी गयेला

અને કરી રહેલા વિદ્વાનોના કાર્યથી પરિચિત કરનાર લેખો આપવાનું 'અનુસન્ધાને' સ્વીકાર્યું છે એ એક સમુચિત-આવકાર્ય પગલું છે. શ્રીમતી કોલેટ કાઝ્યાએ વિવિધ ફ્રેન્ચ વિશ્વ વિદ્યાલયોમાં જૈનધર્મ અને સંસ્કૃત-પ્રાકૃત-અપભ્રંશ આદિ ભાષાઓના અધ્યાપનક્ષેત્રે તથા સંશોધનક્ષેત્રે કરેલું કાર્ય વિપુલ કહી શકાય એવું છે.

*

અનુ૦ ૪૪માં શ્રી રત્નસિંહસૂરિકૃત ચોત્રીસ લઘુકૃતિઓ પ્રસિદ્ધ થઈ છે... સૂરતના શ્રીમોહનલાલજી જૈન ઉપાશ્રયના જ્ઞાનભંડારની તાડપત્રીય પ્રત, તેના પરથી શ્રીઅગરચંદજી નાહટાએ વર્ષો પૂર્વે ઠુતારેલી નકલ, એ નોટબુક શ્રી મૃગેન્દ્રવિજયજી મહારાજ પાસે સચવાઈ, તેના પરથી આ રચનાઓ શ્રીશીલચન્દ્રસૂરિએ સમ્પાદિત કરી અનુ૦માં પ્રગટ કરી ! જ્ઞાન આ રીતે જ હસ્તાન્તરિત થતું આવ્યું છે ને ?

પ્રસ્તુત રચનાઓ વાંચતાં એક ભાવસભર - ચિન્તનસભર કૃતિઓ વાંચ્યાનો અનુભવ થાય છે. કવિના ઝૂર્મિપ્રધાન ધર્મરંગી વ્યક્તિત્વની જાણે કે સાક્ષાત્ છબી આ લઘુકૃતિઓમાં તરવરી રહે છે- આંસુનો ડલ્લેખ આમાં વારંવાર થયો છે.

આ સમુચ્ચયની કેટલીક કૃતિઓ વર્ષો પૂર્વે પ્રતાકારે છપાઈ છે, એમાંની એક રચના 'મનોનિગ્રહભાવનાકુલક' આ પંક્તિઓના લેખકને ખૂબ સ્પર્શી ગઈ હતી અને એનો ગુજરાતી ભાવાનુવાદ પણ કર્યો હતો જે 'જબ લગ આવે નહીં મન ઠામ' એ શીર્ષક સાથે 'દિલમાં દીવો કરો' નામક પુસ્તિકામાં પ્રગટ થયો છે. આ મધુર-માર્મિક-પ્રેરક રચનાના કર્તા વિશે 'અનુસન્ધાન' દ્વારા આજે જાણ્યું.

કવિની સંસ્કૃત રચનાઓ સ-રસ છે જ, તેમ છતાં પ્રાકૃત-અપભ્રંશ રચનાઓમાં કવિ વિશેષ ખીલ્યા જણાય છે. સમ્પાદકશ્રીએ કર્તા અને કૃતિ વિષયક પૂરક નોંધ અને ઇતિહાસપરક વિવરણ આપ્યાં છે અને એ રીતે આ વિશિષ્ટ રચનાને પર્યાપ્ત ન્યાય આપ્યો છે: પાઠસંશોધન પણ થયું છે, છતાં થોડા શુદ્ધિસ્થાન જોવામાં આવ્યા છે. તેની તાલિકા-

कृति क्र.	श्लोक	अशुद्ध	शुद्ध
१.	२३	भावानां	भावनां
२.	१	तदेवं	तदेव
२.	२३	सक्षिणः	साक्षिणः
३.	१६	अहं नो	अह नो
२.	१७	पुणरविमाइ	पुणरवि इमाइ
३.	२६	दीणोसु संत°	दीणो सुसंत°
७.	१०	दिययं	हिययं
७.	१०	निष्फंदं	निष्फंदं
१०.	४	जिणकुंडल०	जिण ! कुंडल०
१०.	५	धणमुत्तिहि	घणमुत्तिहि
११.	६	कुण इजु	कुणइ जु
१२.	१	महवि	तहवि
१५.	२	कालोच्चिय	कालोचिय
१५.	३०	कालोच्चिय	कालोचिय
१६.	११	खगमेगं	खणमेगं
१६.	२१	कहवि संचयसि	कह विसंचयसि
१६.	३०	नत्तणयं	न(नू)त्तणयं
१६.	४३	पाए पउमनाहं	पायपउम ! नाहं
१८.	१	रवेयं	खेयं
१८.	१६	पाविहसि	पाविहिसि
१९.	१३	विजिए	वि जिए
१९.	१४	कंटे णवि	कंटेण वि
१९.	२१	निलक्खण०	निल्लक्खण०
१९.	२६	तेए दुहिण्ण	तेण दुहिएण
		रयणसिहेण	[न] रयणसिहेण
२३.	१	०म्बुधि....	०म्बुधिवृद्धि
२६.	१४	समगयं	सगगयं

૨૯.	૧૦	ત....પઢિમં	તરેજ્જા પઢિમં
૩૧.	૮	જંપિસિ લોયા	જંપિ સિલોયા
૩૨.	૮	ંદલંગુ.... મુ	ંદલં ગુણાન્ કિમુ
૩૪.	૬	વિહરઇ	વિયરઇ
૩૪.	૧૦	પચ્છેઇ	પત્થેઇ

આ અંકની બીજી દીર્ઘ રચના 'શતપચ્છાશિકાસંગ્રહણી' તીર્થંકરાદિ શલાકાપુરુષો તથા વિશિષ્ટ પુરુષોની જીવનવિગતોની સંગ્રહાત્મક રચના છે. આવી વિગતોને યાદ રાખવા માટે પદ્યબદ્ધ રચના સુગમ પડે છે. તેથી 'સંગ્રહણી' નામે એક રચનાપ્રકાર પ્રાચીનકાલથી પ્રચલિત છે. કૃતિ શુદ્ધ છે.

'ચાતુર્યામ સંવર'ના સમ્બન્ધમાં સમીક્ષાત્મક, ગમ્भीર વિચારણા રજૂ કરતો ડૉ. પદ્મનાભ જૈનીનો લેખ, લેખકના પ્રાચીન ભારતીય સાહિત્યના તલસ્પર્શી અભ્યાસનો પરિચાયક છે. પ્રાચીન જૈન-બૌદ્ધ-વૈદિક સાહિત્યમાં યત્રતત્ર નોંધાયેલી વિગતોની તુલના અને તાત્પર્યનું ઉદ્ઘાટન કરવું એ સંશોધનક્ષેત્રે પ્રખર સ્મૃતિ, પ્રખર પ્રામાણિકતા, વિશાલ અધ્યયન માંગી લેતું કાર્ય છે. પ્રસ્તુત લેખ એ દૃષ્ટિએ નમૂનારૂપ છે. અનુવાદ પ્રાંજલ છે.

- જૈન દેરાસર,

નાની ઝાઝર-૩૭૦૪૩૫, ગુજરાત

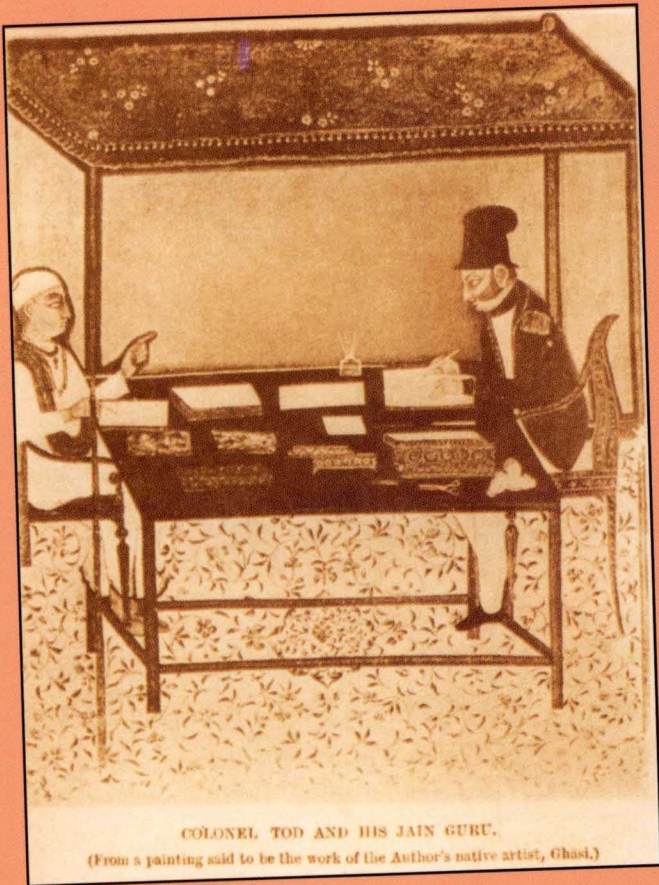
આવરણચિત્ર-પરિચય

કર્નલ જેમ્સ ટૉડના નામથી ભાગ્યે જ કોઈ સંશોધનપ્રેમી અજાણ હશે. 'ટૉડ રાજસ્થાન' એ તેમનો વિખ્યાત ગ્રન્થ છે. તે ઉપર આધારિત, James Tod's Rajasthan નામે એક વિશેષ ગ્રન્થ કે અંક, Marg Publications, Mumbai (2007, Vol. 59/1) પ્રકટ થયો છે. તેમાં પ્રકાશિત આ (આવરણ) ચિત્રનો પરિચય આ પ્રમાણે છે :

ચિત્ર ૧. એક હાથી ઉપર કર્નલ ટૉડ અને તેમનો રસાલો છે, અને સામેના હાથી ઉપર તેના ગુરુ જૈન યતિ જ્ઞાનચન્દ્ર છે.

ચિત્ર ૨. કર્નલ ટૉડ યતિ જ્ઞાનચન્દ્ર પાસે અધ્યયન કરે છે.

Marg Publications ના સૌજન્યથી આ ચિત્રો અત્રે પ્રકટ કરેલ છે. ચિત્રોનો સમય ઈ. ૧૮૨૨નો છે.



COLONEL TOD AND HIS JAIN GURU.

(From a painting said to be the work of the Author's native artist, Ghási.)

